तृतीय अध्याय Chapter-3

हिन्दी-स्तोत्र-साहित्य का विकास

पूर्व अध्याय में आदिकालीन जैन एवं नाथ-साहित्य के स्तोत्रों का विवेचन किया गया है। आदि काल के भी दो विभाग किये जा सकते हैं। ।१। पूर्व आदिकाल ।२। उत्तर आदिकाल। पूर्व आदिकाल में नाथ-सिद्ध-साहित्य को और उत्तर में विद्यापति आदि कवियों के स्तोत्र-साहित्य को स्थान दिया जा सकता है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आदि काल के विषय में लिखा है कि "दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक के समय में लोक भाषा में लिखित जो साहित्य उपलब्ध हुआ है उसमें परिनिष्ठित अपभ्रंश से कुछ आगे बढ़ी हुई भाषा का रूप दिखाई देता है। दसवीं शताब्दी की भाषा के गद्य में तत्सम शब्दों का व्यवहार बढ़ने लगा था, परन्तु गद्य की भाषा में तद्भव शब्दों का ही एकच्छत्र राज्य था। चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्य में इसी प्रवृत्ति की प्रधानता मिलती है।[1] राहुलजी ने अपनी "हिन्दी काव्यधारा" नामक पुस्तक में आठवीं से तेरहवीं शताब्दी तक के कवियों की रचनाओं का संकलन किया है। सम्भवतः उन कवियों की रचनाओं के आधार पर ही इसे आदि काल की संज्ञा दी गई है। कुछ भी हो इसी काल में विद्यापति, चन्द्रबरदाई, आदि के काव्यों में हिन्दी-स्तोत्रों के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं।

विद्यापति : यह बिहार के बिसफी ग्राम में उत्पन्न हुये थे। उन्होंने शिव-शक्ति एवं अनेक देवी देवताओं का स्तवन किया है। शिव और विष्णु दोनों ही उनके आराध्य हैं जिनकी भक्ति में उनकी आत्माभिव्यक्ता निखर उठती है। शिव की स्तुति करते हुये वे कहते हैं :

> शिव हो उतरब पार कओन विधि
> लोढ़ब कुसुम तोड़ब बेल पात, पूजब सदाशिव गौरिक सात।
> बसहा चढ़ल शिव फिरथु मसान, भंगिया जरठ दर दौनहि जान।
> जप तप नहिं कैलहु नितदान, बितगेल तिन पाकर सेयान।।
> भन "विद्यापति" सुनु महेस, निरधन जनिके हरहु कलेस।।[2]

---

१. दे० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी .. हिन्दी-साहित्य

२. दे० विद्यापति की पदावली पृ० २३६

उन्हें मुक्ति की आकांक्षा है । यद्यपि उन्होंने जप तप नहीं किया है , पर कुन्चि मुक्ति की इच्छा करते हैं और फिर शंकर तो भोले बाबा हैं क्षण मात्र में प्रसन्न हो जाते हैं । इसीलिए विद्यापति उनकी प्रार्थना करते हैं । वह कहते हैं कि "इस संसार में पाप तो उसे छोड़ता नहीं चाहता । पग-पग पर शक्ति हीन की भांति उसे अपने आपको कुकृत्यों की ओर मोड़ना पड़ता है और फिर वह उनसे बच भी कैसे सकता है । केवल शंकर ही उसे मुक्त कर सकते हैं । इसीलिए आज वह उनकी शरण में आया है ।[१.] शंकर की कृपा से सभी प्रकार की दुर्भावनायें नष्ट हो जाती हैं । शंकर की कृपा-दृष्टि मानव जाति के सभी कष्टों का क्षण मात्र में विनाश करती है । वह तो अज्ञानी है । यदि अब भी शंकर उसकी रक्षा नहीं करते तो कौन करेगा ?[२.] कृष्ण के पद-पल्लव ही संसार में सबके रक्षक हैं । उन्हीं के द्वारा वह पाप मुक्ति चाहता है । इस प्रकार की भावना अनेक पदों में देखी जा सकती है ।[३.] अनेक पाप करने पर भी वे मुक्ति की ही कामना करते हैं । देवी-देवता सदैव भक्त की रक्षा के लिए तत्पर रहते हैं । अतः भक्त का उनकी शरण में जाकर आनंद की कामना करना स्वाभाविक ही है ।

निष्कर्ष : विद्यापति के स्तोत्रों में अत्यंत उदार धार्मिक भावना के दर्शन होते हैं । उन्होंने कृष्ण , शिव , गंगा , दुर्गा आदि अनेक देवी-देवताओं की स्तुतियां लिखी हैं जिनको लेकर विद्वानों ने उनकी साम्प्रदायिक निष्ठा के विषय में अनेक प्रकार के मत व्यक्त किए हैं । कुछ विद्वान् उन्हें वैष्णव मानते हैं और कुछ शैव ।[४.] इस विवाद के विषय में महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र का मत विचारणीय है । उन्होंने लिखा है कि इस प्रकार शक्ति विष्णु और शिव तीनों को एक ही अनादि पर ब्रह्म के भिन्न भिन्न स्वरूप जानते हुए मिथिला वासियों

---

१. दे० विद्यापति की पदावली पृ० २४१

२. वही पृ० २४८

३. वही पृ० १५४ , १५५, १५६ , २६२

४. दे० डा० सूर्यबली सिंह ... विद्यापति पृ० ८०

दे० डा० रामचंद्र मिश्र हिन्दी-पद-परम्परा और तुलसीदास पृ० १२६-१३०

ने इनमें अभेद बुद्धि प्राप्त कर ली है । एक प्रकार से इनमें परस्पर विरोध देख पड़ता है किन्तु तत्वैक दृष्टि वालों के लिए इसमें तो कोई भी विरोध नहीं है ।[1] विद्यापति इस प्रकार की तत्व दृष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं । वे चाहे शैव रहे हों या वैष्णव उन्हें गोस्वामी तुलसीदास की भाँति स्मार्त कोटि में रखा जा सकता है जिन्होंने वैष्णव होते हुए भी दुर्गा , शिव , गंगा आदि देवताओं के सरस एवं काव्य गुण पूर्ण स्तोत्र लिखे हैं ।

चन्द वरदाई

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी-साहित्य का अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है । इसके सम्बंध में विद्वानों ने अनेक प्रकार के मत प्रकट किए हैं । कुछ लोग इसे एकदम अप्रामाणिक रचना मानते हैं और कुछ दूसरे लोग पूर्ण रूप से तो नहीं पर आंशिक रूप से इसे प्रामाणिक ग्रंथ मानते हैं ।[2] इसका मूल रूप तो आज अप्राप्य है और जो प्रतिलिपि प्रकाश में आई भी है उसे सोलहवीं शताब्दी का संग्रह माना जा सकता है । परन्तु यह अत्यंत संकेत पूर्ण तथ्य है कि चन्दवरदाई के नाम से मिलने वाले छन्दों में जिनकी प्रामाणिकता लगभग नि: सन्दिग्ध है , वे स्तुत्य ही हैं ।[3] साहित्यिक दृष्टि से उसमें वीर , शान्त एवं शृंगार रस की प्रधानता है । डिंगल भाषा के माध्यम से चन्द ने इसमें अत्यंत ही कलात्मकता भर दी है ।

पृथ्वीराज रासो में चौबीस अवतारों की स्तुतियां लिखी गई हैं । इसके अतिरिक्त उसमें प्राय: सभी प्रमुख देवी-देवताओं के भी स्तोत्र मिलते हैं । इसमें से अनेक स्तोत्र विष्णु , शिव गणेश , सरस्वती , देवी आदि से सम्बंधित हैं । उसने गंगा, यमुना आदि पवित्र नदियों के भी स्तोत्र लिखे हैं जिनमें उसकी आंतरिक भक्ति-भावना का अनुभव किया जा सकता है । पृथ्वीराज रासो में प्राप्त स्तोत्रों की चार कोटियां मानी जा सकती है :

१. मंगला चरण

१.दे० डा० उमेश मिश्र विद्यापति ठाकुर पृ० १७६

२.दे० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी .. सं० पृथ्वीराज रासो : भूमिका पृ० १

३.दे० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी .. हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ६७

२. वंदना

३. स्तुति

४. विरुद्ध

मंगला चरण : वह एक स्थल पर शिव से अपने काव्य की सफलता की याचना करता है ।[१] वह वीणा धारिणी सरस्वती से अपने काव्य में सहायता की प्रार्थना करता हुआ कहता है :

मुक्ताहार विहार सार सबुधा , अबधा बुधा गोपिनी ,
सेत चीर सरीर नीर गहरा , गौरि गिरा जोगिनी ।
वीणा पाणि सुवानि जानि , दधिजा हंसा रसा आसनी ,
लंबोज चिहुरार भार जघना , विघना घना नासिनी ।।[२]

कन्नौज-प्रवेश के समय भी चंद ने सरस्वती की वंदना करते हुए मंगलाचरण किया है ।[३]

वंदना : इस प्रकार के स्तोत्रों में चन्द ने आदि ~~पुरुष~~ पुरुष , विष्णु , शिव[६] , नृसिंह[४] , कोल[५] , पूर्व कवि , गंगा आदि के विषय में अपनी भक्ति प्रदर्शित की है । आदि पुरुष की वंदना में स्तोत्रकार कहता है :

आदी देव पुनम्य नम्य गुदयं , वानीय वंदे पयं ।
सिष्टं धारन धारयं वसुमती , लच्छीस चरना श्रयं ।।
तंगुतिष्ठति ईस दुष्ट दहन , सुर नाथ सिद्धि श्रयं ।।
थिर चर जंगम जीव चंद नमयं , सर्वेस वंदी मयं ।।१।।[७]

उसने अपने पूर्व के कवियों को भी वन्दन किया है :

छदं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं ।
जिनें बागवानी सुबानी सुबृद ।
कियो कालिका मुख्ख वासं सुसद्धं ।
जिनें सेत बध्योति भोज प्रबंध ।।[८]

---

१. दे० कविराव मोहन सिंह पृथ्वीराज रासो छ० १५ पृ० ७
२. दे० वही पृ० ६
३. दे० वही चतुर्थ भाग छं० १८६ पृ० ६४५
४. दे० वही प्र० भा० पृ० ३७
५. दे० वही प्र० भाग पृ० ३८ छंद ~~स्पष्ट~~ १०
६. दे० वही च० भा० पृ० ६३३ छंद १५७
७. दे० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीराज रासो आदि पर्व छंद १
८. दे० वही छं० १

स्तुति : जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि चन्द ने 'पृथ्वीराज रासो' में विष्णु, शिव, कच्छप, कोल, नृसिंह, गणेश, सरस्वती आदि का स्तवन किया है। कुछ स्तोत्रों में उसने शिव और विष्णु के रूपों का समन्वय भी किया है।[1] नृसिंह की स्तुति पर स्तोत्रकार प्रहलाद के समान अपनी मुक्ति चाहता है।[2] कुछ स्तोत्रों में उसने यमुना की भी प्रशंसा की है और उसे देवताओं की सहायिका एवं रक्षिका भी बताया है।[3]

विरुद्ध : कुछ ऐसे स्तोत्रात्मक प्रसंग भी रासो में मिलते हैं जिनपर विरुद्ध-शैली का प्रभाव है। उनकी शब्द योजना और शैली ओज गुण प्रधान है और छंद-योजना भी ओज गुण एवं वीर रस के अनुकूल है। निम्नलिखित में इसकी सरसता अनुभव की जा सकती है :

धरि कच्छप कौ रूप नृप दानव संहारे।
लई लच्छि सागर सुमत्थि रिक्ख आपन सुधारे।
राह सीसकिय खंड मिंडि दानव सब भंजिय।
किये देवासुर जुद्ध, ईसवर करि अरि गज्जिय।
धारी सुधरा हरि पिट्ठ पर दिय रत्न वंटिय सुरन।
कविचन्द दंद मैटन दुनी श्री कच्छ पतैरे सरन।[4]

निष्कर्ष : इस प्रकार चंद के स्तोत्रों में भक्ति-भावना का अत्यंत सच्चा रूप मिलता है। स्तोत्रकार ने अपने स्तोत्रों में साटक, भुजंग प्रयति, दूहा, छप्पय आदि को स्थान दिया है जो उस काल की प्रचलित परम्परा के छंद थे।

---

१. दे० कविराव मोहन सिंह : पृथ्वीराज रासो छंद २० पृ० ६
२. वही पृ० ४०
३. वही तृतीय भाग पृ० ३२
४. वही तृतीय भाग पृ० ३७

उसमें भावानुकूल भाषा एवं छंद प्रयोग की क्षमता है थी । उसके छंदों की संगीतात्मकता भी किसी प्रकार कम नहीं कही जा सकती । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है-'छंद-परिवर्तन के प्रवाह में सहज आत्म विस्मृति का ऐसा सुख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता । रासो एक ही साथ संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की प्राचीन छंद परम्परा के पुनरुज्जीवन तथा हिन्दी के नव छंद संगीत के सूत्रपात की संधि-बेला है ।'[1] जो कुछ भी हो चंद के स्तोत्रों का दार्शनिक एवं कलात्मक महत्व किसी ~~क्रम~~ प्रकार कम नहीं कहा जा सकता । ~~नरपति नाल्ह । बीसलदेव~~

बीसलदेव रासो : इस काल के अन्य रासो ग्रंथों में 'नरपति नाल्ह' के 'बीसलदेव रासो' का भी विशेष स्थान है । इसमें सरस्वती एवं गणेश की वंदना स्वरूप मंगलाचरण प्राप्त होते हैं । निम्नलिखित में कवि ने अपने काव्य की सफलता की कामना की है :

हंस वाहिणि मिगलोचनि । सीस समारइ दिन गिणइ ।
जिण खिजइ डलि गण घर नारि । जाइ दिहाडाउ फूरिजा ।।१।।
गौरी-नंदन त्रिभुवन सार । नाद वेदां थारै उदर भंडार ।
कर जोड़े 'नर पति' कहइ । मूषा वाहन तिलक सैं दूर ।
एक दंतउ मुख भल मलइ । जाणिक रोहणी उतप्पई सूर ।।२।।
तुठी सारदा त्रिभुवन माई । देव विनायक लागू हूँ पाय ।
तोहिं लम्बोदर वीन वूँ । चक्रसि ठि जो गिनि का अगि वाणी
चक्रथ जो डारूं खोपरा । मूलेउ अक्खर आणजे ठांइ ।।
सर सति सामणी करउ ह्उ पसाउ । रास प्रगासउं बीसल दे राउ ।
खेला पइसइ मांडली । आखर आखर आणजे जोड़ि ।।[2]

---

१. दे० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी सं० पृथ्वीराज रासो पृ० १८१
२. बीसल देव रासो प्रथम सर्ग छंद १, २, ४, ५

वर्तमान 'आल्ह खंड' हिन्दी की आधुनिक बोलियों में प्राप्त होता है। ऐसी अवस्था में उसका भाषा तत्व भी लुप्त हो गया है। 'आल्ह खंड' के प्रारम्भ में देवताओं की वंदनायें मिलती हैं जिन्हें सुमिरिनी कहा जाता है। सम्भव है यह परम्परा जगनिक के मूल 'आल्ह खंड' से चली आ रही हो। निम्नलिखित में नारायण एवं गणेश का स्मरण किया गया है-

> सुमिरन करिकै नारायण को। श्रीगणपति को चरण ~~मनाय~~ मनाय
> गाऊँ लड़ाई अब अखीर की। यारौ सुनियो कान लगाय [१.]

इन ग्रंथों की अपेक्षा 'हम्मीर रासो' 'जय चंद प्रकाश' आदि में भी कुछ स्तोत्रात्मक स्थल हैं। इन काव्यों में प्रयुक्त होने वाले स्तोत्रों को यदि भक्ति एवं दर्शन की कसौटी पर कसा जाय तो वे अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे। उनमें भक्ति-भावना की सूक्ष्मता का सरलता से अनुभव किया जा सकता है। आगे की चारणी परम्परा के काव्य में भी रासो परम्परा के सब स्तोत्र प्राप्त होते हैं।

भक्ति कालीन साहित्य में स्तोत्र 4. ज्ञान मार्गी परम्परा।

हिन्दी की ज्ञानाश्रयी निर्गुण धारा में विपुल साहित्य लिखा गया है। निर्गुण वादी संतों के अनेक सम्प्रदाय प्राप्त होते हैं, इन सब सम्प्रदायों में कुछ न कुछ साहित्य भी आवश्य मिलता है। जिन सम्प्रदायों के वृत्त उपलब्ध हैं उनके नाम इस प्रकार हैं। ।१। सधना पंथ ।२। अलखधारी पंथ ।३। कबीर पंथ ।४। सेन पंथ ।५। रैदासी पंथ ।६। नानक पंथ ।७। साध सम्प्रदाय ।८। लाल पंथ ।९। दादू पंथ ।१०। निरंजनी सम्प्रदाय ।११। बावरी पंथ ।१२। मलूक पंथ ।१३। वाला लाली सम्प्रदाय ।१४। सतनामी सम्प्रदाय

दे० हिन्दी के कवि और काव्य पृ० ८१

।१५। अनीश्वरी सम्प्रदाय ,।१६। ~~दरिया दासी ।१५। अनीश्वरी सम्प्रदाय ,~~
।१६। दरिया दासी सम्प्रदाय ,।१७। दरिया पंथ , ।१८। शिव नारायणी सम्प्रदाय ,।१९। चरण दासी पंथ ।२०। गरीब पंथ ,।२१। पानप पंथ ,
।२२। राम सनेही सम्प्रदाय ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है " जहाँ तक पता चलता है "निर्गुण मार्ग , के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीर दास ही थे । जिन्होंने एक और तो स्वामी रामानंद जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और दूसरी और योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किए हैं । वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिए । इसी से उनके तथा "निर्गुणवाद " वाले और दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की फलक मिलती है, कहीं योगियों के नाड़ी-चक्र की , कहीं सूफियों के प्रेमतत्त्व की कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदावाद की , कहीं अहिंसावाद की । अत: तात्त्विक दृष्टि से न तो हम उन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी । दोनों का मिला जुला भाव इनकी बानी में मिलता है । इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति पद्धति का प्रचार था , जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों योग दे सकें और भेदभाव का कुछ परिहार हो । बहुदेवोपासना अवतार और मूर्ति-पूजा का खंडन यह मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुरबानी । हिंसा । नमाज , रोजा आदि की असारता दिखाते हुये , ब्रह्म , माया , जीव , अनहद नाद , सृष्टि प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिन्दू ब्रह्म ज्ञानी बन कर करते थे । सारांश यह है कि ईश्वर-पूजा की उन भिन्न भिन्न बाह्य विधियों पर से ध्यान हटा कर जिनके कारण धर्म में भेद भाव फैला हुआ था ये शुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्त्विक जीवन का प्रचार करना चाहते थे । "[१]

---

१. आचार्य शुक्ल .. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ७०

इस विपुल निर्गुण काव्य-साहित्य में से यदि बहुदेवोपासना , अवतार , मूर्ति-पूजा के खंडन , रोजा , नमाज , माया , अनहद नाद , सृष्टि , प्रलय आदि की असारता से सम्बंधित साहित्य को निकाल दिया जाय , तो जो कुछ बचता है उसे हम सामान्य रूप से स्तोत्रात्मक साहित्य कह सकते हैं। इसमें किसी न किसी रूप में भगवान की अभ्यर्थना की गई है और उनके प्रति आत्म-निवेदन का भाव ही प्रधान रूप से अभिव्यक्त किया गया है।

संत-साहित्य के रूप :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'निर्गुण मार्गी संतों का अधिकांश साहित्य साधनात्मक रहस्यवाद की कोटि में आता है जिसमें वेदान्त और हठयोग में निर्दिष्ट पारिभाषिक संज्ञाओं के आधार पर साम्प्रदायिक साधनों के लिये बहुत सी उपयोगी बातें कही गई हैं। ऐसी रचनाएँ स्तोत्रात्मक साहित्य की कोटि में नहीं गिनी जा सकती। ऐसी रचनाओं के बीच-बीच में जहां इन संतों का भक्त रूप प्रगट हुआ है वहां ये रचनायें बड़ी स्वाभाविक और मर्म स्पर्शी बन पड़ी हैं। स्तोत्र साहित्य के मूल भूततत्त्व हमें इसी प्रकार की रचनाओं के अन्तर्गत मिलते हैं। वस्तुत: कबीर और उनके अनुयायी निर्गुणमार्गी संतों की वाणी की केन्द्रीय वस्तु प्रेमा भक्ति ही है। जहां जहां यह प्रेम भक्ति का तत्त्व व्यक्त हुआ है वहां वहां भगवान के प्रति अहैतुक प्रेम की व्यंजना बड़े ही मर्म स्पर्शी शब्दों में अत्यंत ही स्वाभाविक रूप में है।[१] भगवान् के प्रति भक्त के अनन्य परायण आत्मार्पण की भावना से भरी हुई ये रचनायें काव्य की भी परम विभूति है। जगद्धर भट्ट जैसे अन्यतम स्तोत्रकारों की रचनाओं में जो तत्त्व मिलते हैं , वे इन रचनाओं में भी अनायास ही उपलब्ध हो जाते हैं। वस्तुत: भक्त रूप ही अधिकांश निर्गुण मार्गी संतों का वास्तविक रूप है। अत: उनकी रचनाओं में सर्वोच्च कोटि के स्तोत्रों के तत्त्व खोजना और प्राप्त कर

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी   कबीर पृ० २२०

लेना कठिन नहीं है । इस प्रकार संतों की वाणी की रचना की जो प्रविधि या विभाग मिलता है , वह सामान्यत: कबीर की रचना के विभाग का ही अनुसरण करता है । कबीर की रचना में बीजक , रमैनी , शब्द , ज्ञान , चौंतीसा विप्र बतीसी कहरा , बसन्त , चाचर बेली , बिरहुली , हिंडोला और साखी ये ११ अंग हैं । :२ १५। दादू आदि अन्य संतों की रचनाओं में भी इसी प्रकार साखी, शब्द और दोहरे आदि मिलते हैं । रमैनी शब्द[१] का प्रयोग क्रमश: स्तुति वर्णन कथा- उपदेश पद्य के रूप में किया गया है ।

स्तोत्र के विविध रूपों का विवेचन पूर्ववर्ती अध्याय में किया जा चुका है । इनमें से संत- साहित्य के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले रूप इस प्रकार है :

१. मंगलाचरण
२. स्तुति
३. वंदना
४. सुमिरिनी ~~करनकर्म~~

~~पर यहाँ विचार किया गया है ।~~

१. मंगलाचरण : निर्गुण-संत-साहित्य में मंगलाचरण का काव्य शास्त्रीय रूप नहीं मिलता है । इसका कारण यह है कि इन संतों ने कोई ग्रंथ लिखने का विचार या उपक्रम नहीं किया । परमात्मानुभूति के आवेश में समय-समय पर जो वाणी उनके मुख से नि:सृत होती रही , उसी का संकलन एक विशेष क्रम से उनके शिष्यों के द्वारा किया गया । इन संतों के साखी संग्रह में प्राय: गुरू का अंग पहले मिलता है इसलिए इसे संत- साहित्य के दृष्टिकोण से मंगलाचरण का एक रूप माना जा सकता है । सुंदरदास और निश्चलदास जैसे कुछ संतों ने संकल्प पूर्वक ग्रंथ भी लिखे हैं । उनकी कृतियों में मंगलाचरण मिलता है । निश्चल दास जी के 'विचार-सागर' के प्रारम्भ में जो मंगला चरण मिलता है वह ऐसा है जो

---

१. परशुराम चतुर्वेदी, कबीर-साहित्य की परख पृ० १६३

वस्तु निर्देशात्मक भी है और जिसमें सगुण भक्तों के समान समस्त देवताओं की वंदना भी की गई है :

जो सुख नित्य प्रकाश विभु , नाम रूप आधार ।
मति न लखै जिहिं मति लखै , सो मैं शुद्ध अपार ।।१।।
अब्धि अपार स्वरूप मम , लहरी विष्णु महेश ।
विधिरवि चंद्रा वरुण यम , शक्ति धनेश गनेश ।।२।।
जा कृपालु सर्वज्ञ को , हिय धारत मुनि ध्यान ।
ताको होत उपाधितैं , मोमैं मिथ्या मान ।।३।।
है जिहिं जाने बिन जगत , मनहु जेवरी साँप ।।
नशै भुजग जगजिहिं लहै , सो ब्रह्म आपै आप ।।४।।
बोध चाहि जाको सुकृति , भजन राम निष्काम ।
सो मेरो है आतमा , काकूँ करू प्रणाम ।।५।।
भर्यो वेद-सिद्धांत जल , जामैं अति गंभीर ।
अस विचार सागर कहूं पौखि मुदित है धीर ।।६।।
सूत्र भाष्य वार्तिक प्रभृति , ग्रन्थ बहुत सुरबानि ।
मैं तथापि भाषा करूं , लखि मति मंद अजानि ।।७।।

विचार-सागर, प्रथम तरंग पृ० १

परन्तु सुंदर दास जी के मंगलाचरण में ब्रह्म , गुरू एवं संतो की वन्दना की गई है ।

प्रथम वंदि परमब्रह्म परम ,आनंद स्वरूपं ।
दुतिय वंदि गुरुदेव दियो जिह ज्ञान अनूप ।
त्रितिय वन्दि सब संत जोरि कर तिनकै आगय ।
मनवचकाय प्रमाण करत भय , भ्रम सब भागय ।
इहि भांति मंगलाचरण करि सुंदर ग्रंथ स बखानिये ।
तह विघ्न कोऊ उप्पजय यह निश्चय करि मानिये ।। १.
... ज्ञान समुद्र ग्रंथ

---

१. सुंदर ग्रन्थावली । ज्ञान समुद्र ग्रंथ), प्रथमउल्लास पृ० १ छंद १

२. स्तुति : संत-साहित्य में स्तुतियाँ दो प्रकार की हैं । :१: प्रथम गुरू-सम्बन्धी, :२: ईश्वर सम्बंधी- संत साधक मन स्प्रवृतियों के अन्तर्मुख कर देने के समर्थक थे । अत: उनकी ईश्वर विषयक स्तुतियाँ साधना के दृष्टिकोण से बाह्याचार्य मात्र न होकर साधना पथ में लगे हुये भक्त और भगवान के बीच आत्मनिवेदनात्मक रूप में थी ।[१] कहीं वे उसे एक मात्र स्वामी और स्वंयं उनका एक मात्र सेवक बनाना चाहते हैं और प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि उसे अपना बना लें । :२: ईश्वर विषयक स्तुतियों की दूसरी विशेषता परमात्म तत्व से मिलन की तड़पन है और दर्शन के निवेदन की है ।१। प्रभु का बनकर रहने में ही कल्याण है । उसकी कृपा से सभी कष्ट क्षण मात्र में नष्ट हो जाते हैं ।२। प्रभु की ही ज्योति संसार में व्याप्त है ।३। गुरू की प्रशंसा संत कवियों ने गुरू को सर्वाधिक महत्व दिया है । इसके द्वारा आध्यात्मिक जगत में आगे प्रवेश पाने की कुंजी हाथ लग जाती है । यदि किसी को सच्चा गुरू मिल जाय तो आगे की सफलता निश्चित हो जाती है और यही कारण है जिससे संतों में उसे बहुत अधिक महत्व दिया गया है ।५।(हिन्दी-काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० २१५ डा० बड़थ्वाल) कबीर ने परमेश्वर और गुरू में कोई अन्तर नहीं माना है । केवल आकार मात्र से भिन्नता लक्षित होती है । अपने अहं भाव का त्याग करके जीते जी मर जाओ और तभी तुम्हें वह परमेश्वर प्राप्त होगा ६ ।

---

१. खाना जादा गुलाम, अपन कर लीजिये ।
खाना जादा गुलाम तुम्हारा है सही ।
मिहरवान महबूब, जुगन जुग मत रही ।
बाँदी जाद गुलाम, गुलाम गुलाम है ।।सं० बा० सं०
भाग २ पृ० १८२ गरीब दास की बाणी

२. ताहि गुसांई नमों नमों, अलख निरंजन नमों नमों । दद० की बानी पृ० ११।

।३। अस करिये साहिब दाया ।
कृपा-कटाक्ष होइ हितें प्रभु छूटि जाय मन माया ।
सोवत मोह निसा निसवासर, तुम्हीं मोंहिं जगाया ।।
जनमत मरत अनेक वार तुम, सद्गुरू होय लखाया ।
भीखा केवल एक रूप हरि, व्यापक त्रिभुवन राया
। भीखा साहब की बानी शब्द संग्रह पृ० १६५ ।

गुरू के द्वारा ही हम प्रभु तक पहुंच पाते है । वास्तव में गुरू प्रभु की प्राप्ति का मुख्य द्वार है । संसार के माया जाल से गुरू ही मुक्ति दिला सकता है है ।[1] गुरू ही सब प्रकार का रक्षक और सहायक है वही ~~भक्~~ भक्त को अज्ञानान्धकार से दूर कर प्रभु के सन्निकट ले जायेगा ।[2]

३. सुमिरन : निर्गुण संतों के दूसरे प्रकार के पद 'सुमिरन' के अन्तर्गत आते हैं जिसे 'सुमिरनी' भी कहा जा सकता है । अधिकांश व्यक्ति एक ही मंत्र या नाम का स्मरण बार बार करते हैं । परन्तु निर्गुण पंथ की भांति कोई भी नाम सुमिरन को महत्व प्रदान नही करता ।[3] इस प्रकार सुमिरन तीन प्रकार का होता है ।१। 'जाप' जो कि बाह्य क्रिया होती है ।२। 'अजपा जाप' जिसके

पिछले पृष्ट का

५. रैदास : प्रभु जी तुम चंदन हम पानी
जाकी अंग, अंग बास समानी ।

६. गुरू गोविंद तो एक हैं, दूजा यहु आकार ।
आपा मेटि जीवत मरै, तो पावै करतार ।।२६।।
क० ग्र० पृ० ३

कबीर ते नर अंध हैं, गुरू को कहते और ।
हरि रूठे गुरू ठौर हैं, गुरू रूठे नहि ~~ठ~~ ठौर ।।४।। वही ५०२
गुरू गोविन्द दोनो खड़े, काके लागूं पायं ।।
बलिहारी गुरू आपणे, जिन गोविन्द दियो बताय ।।
सं० बा० स० पृ० २ .१२

---

१. बार बार विनती करूँ, सदगुरू चरन निवास ।
सद गुरू चरन निवास बास मोहि दीन्ह लखाई ।।
तुलसी मै अतिहीन हूं, दीन्हा अगम अवास ।
बार बार विनती करूं सत गुरू चरन निवास ।।
। तुलसी साहिब । शब्द संग्रह पृ० २२५.२६

२. सतगुरू — — — — — दाता होहु हमारी जगजीवनदास

३. डा० बड़थ्वाल, हिन्दी-काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० २१०

अनुसार साधक बाहरी जीवन का परित्याग कर आभ्यंतरिक जीवन में प्रवेश करता है और ।3। `अनाहत ` जिसके द्वारा साधक अपनी आत्मा के गूढ़तम अंश में प्रवेश करता है, जहाँ पर अपने आप की पहचान के सहारे वह सभी स्थितियों को पार कर अंत में कारणातीत हो जाता है। ४

वही । डा० बड़थ्वाल पृ० २२५

'सुमिरन' एक प्रकार की प्रेम-साधना है वह कभी अपने प्रियतम से किसी वस्तु की भीख माँगने के उद्देश्य से नहीं की जा सकती क्योंकि प्रेमी को तो अपने प्रियतम का नाम प्यारा हुआ करता है (पृ० २२६ वही बड़थ्वाल) 'नाम-सुमिरन जिसे हम मंत्र योग भी कह सकते हैं। सुरति शब्द का योग इसका एक दूसरा रूप है और इस प्रकार वह सारे योगों का भी योग है।

। वही पृ० २२८ ।

सिक्खों में भी इसी प्रकार जप की तीन श्रेणियाँ हैं।

जाप	। साधारण जप
अजपा जाप	। अजपा जप
अनाहत	। लिव जप

निर्गुण संतों ने `जप `में `राम ` को महत्व दिया है और उनका राम तुलसी के राम के समान `दशरथ सुत `नहीं है। वह घट-घट वासी है। वास्तव में `सुमिरन ` का उद्देश्य भगवान की `सुरति ` में अपने को मिला देना है। [१] (२२१) कबीर कहते हैं कि `तुझे स्मरण करता करता मैं `तू ` बन गया अब मुझमें मैं नहीं रह गया। अब मैं तुझ पर न्योछावर होता हूँ, मैं जिधर देखता हूँ तू ही तू दीख पड़ता है `१. दादू भी कहते हैं ` हे स्वामी यह शरीर तेरा है, यह आत्मा भी तेरी है, और ये सारे प्राण व पिंड भी तेरे ही हैं। सब कुछ तेरा है किन्तु तू मेरा है और यही मेरा मान है। [२] कभी कभी एक विरहिणी नारी की भाँति निर्गुणी संत प्रभु का `सुमिरन करते हैं। उनका अंग प्रत्यंग प्रियतम के ध्यान में डूबा रहता है। यह कान्ता भाव की जो रति है वह इस देश के निर्गुण भाव के उपासक भक्तों में भी पाई जाती है। कबीरदास, दादू आदि भक्तों में भी यह भाव है, परन्तु वहाँ समासोक्ति पद्धति से काम लिया जाता है और लौकिक कान्ता विषयक प्रीति व्यंजना का विषय होता है।

फु० फुट- नोट अगले पृष्ठ पर देखिये

कबीरदास प्राय: ऐसे पदों के अंत में सद्गुरू या संतों का नाम सावधानी से लेते हैं, जिससे आध्यात्मिक प्रीति निश्चित रूप से प्रस्तुतार्थ हो जाती है। अपने 'प्रतिव्रता के अंग' में संतों ने प्रभु को प्रियतम मान कर हृदय में बिठाने का प्रयत्न किया है। कबीर ने राम को पिउ कहा है। १. अपने 'बालम' को हृदय में बसाकर वे अपनी आन्तरिक शांति की कामना करते हैं। जिस प्रकार कामुक को नारी और प्यासे को पानी प्रिय होता है उसी प्रकार कबीर को प्रियतम के प दर्शन की कामना है। २. प्रियतम के बिना नींद नहीं आती। उसे मीन के समान तड़पना पड़ता है। ३. और जब पतिव्रता को

(पूर्ववर्ती पृष्ठ की पादटिप्पणियाँ)

१. तूं तूं करता तूं भया, मुझमें रही न हूं।
बारी फेरी बलि गई जित देखूं तित तूं ।।६।। क
क० ग्रं० पृ० ५

२. तन भी तेरा, मन भी तेरा, तेरा पिंड पराण।
सब कुछ तेरा तू है मेरा, या दादू का ज्ञान ।।सं०
दा० सं० पृ० ६१

---

१. राम मेरे पिउ मै राम की बहुरियां।
राम बड़े मैं, लकुट लहुरिया ।। अथवा

२. बालम आओ हमरे गेहरे। तुम बिन दुखिया देहरे।
सब कहे तुम्हारी नारी, मोरो यह संदेश रे।।
एक मेक है सेज न सोवै, तब लगि कैसो स्नेह रे।
अन्न न भावे नींद न आवै, ग्रह,वन धरे न धीर रे।।त्र
ज्यों कामी को कामिनि प्यारी, ज्यों प्यासे को नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपकारी पिय से कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भये हैं बिन देखे जिउ जाय रे।।
क० सा० की श० पृ० ७, ८

३. सखि मोहिं नींद न आवैरी। एरी बैरन विरह जगावै।
सूनी सेज पिया बिन व्याकुल। पीर सतावैरी।।
रैन न चैन दिवस दु:ख व्यापै। जग नहिं भावैरी।।
तड़फत वदन बिना दुलसइयां। सब जरि जावैरी ।।२।।
शब्दावली पृ० २

प्रियतम मिल जाता है तो सभी सुख प्राप्त हो जाते हैं ।[१] भक्त की यही कामना है । संतों की विरह-भावना यथार्थ भक्ति है । भक्त के समान विरहणी रात-रात भर जागरण करती है, उसे प्रभु के बिना किसी प्रकार भी शांति नहीं ।[४]

मारग जोवै विरहनी , चितवै पिय की ओर ।
सुन्दर जियरे जक नहीं , कल न परत निस भोर ।।१।।
सुन्दर विरहिनि अधजरी , दु:ख कहै मुख रोइ ।
जरिबरि कै भसमी भई , धुवा न निकसै कोई ।

सा० सं० पृ० १०६

जब प्रियतम मिल जाते हैं तब उन्हें नेत्रों में बसा लिया जाता है ।

नैनों की कर कोठरी , पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारिके , पिय को लिया रिझाय ।।

वंदना : निर्गुण साहित्य में निम्नलिखित रूपों में वंदनाएं प्राप्त होती है :

|१| गुरू-वंदना |२| परमात्म-वंदना
|३| संत-वंदना |४| नाम-वंदना
|५| सहज समाधि वंदना |६| विरह-वंदना
|७| सत्यलोक की वंदना

संतों की वंदना में ईश्वर का गुण-कथन किया जाता है । भक्त भगवान के गुणानुवाद में ही अपने हृदय की शांति अनुभव करता है । भक्त इसके द्वारा अधिक से अधिक मात्रा में महत्व का प्रतिपादन करता है ।

गुरू-वंदना : संत कवियों ने गुरू के प्रति अपनी असीम भक्ति प्रदर्शित की है । सतगुरू सर्वगुण सम्पन्न और महान् हैं , बिना उसके भक्ति असंभव है ।

---

१. दुलहिन गावहु मंगलचार । हमारे घर आये राम भरतार ।

उसी के द्वारा भगवत् प्राप्ति होती है । [1] यह निष्काम से की जाती है । भक्त को प्रभु से कुछ नहीं केवल कृपा की कामना है । उसकी माया का पार किसी ने नहीं पाया है । [2] वह शीतल स्वभाव का जगत हितकारी और रक्षक है , उसकी बाणी मधुर है , वही पीर पैगम्बर , कादिर और करीम है । [3]

परम दयाल राया राय परसोत्तम जी
ऐसो प्रभु छोड़ि और कौन के कहाइये ।
सीतल सुभाव जाके तामस को लेस नहीं ।
मधुर बचन कहि राखै , समझाइये ।।
भक्त वछल गुन सागर कला निधान
जाको जस पात नित बेदन में गाइये
कहत 'मलूक' बल जाउ ऐसे दरस की ,
अधम उधार जाके , देखे सुख पाइये ।।

मलूक दास की बाणी पृ० २६..२७

गुरू कुम्हार और शिष्य घड़े की भाँति होते हैं । गुरू वर्तन की बुराइयों को ठोक ठोक कर सुधारता रहता है भीतर से वह अपने हाथ का सहारा देता है और ऊपर चोट भी मारता जाता है । [4]

---

१. गुर कुंभार शिष कुंभ है , गढि गढि काढै खोट ।
अंतर हाथ सहार दै , बाहर बाहै चोट ।।
स० वा० स० पृ० २

२. जै जै जै जगदीस हूँ तूँ समरथ साँई ।।
सकल भवन भाने घड़े , दूजा को नाहीं ।।१५।।
नमो नमो हरि नमो नमो । दादू दयाल की बानी । पृ० ७३५२१८३

३. काया देवा काया देवल , काया जंगम जाती ।
काया धूप दीप नैवेद्य , काया पूजों पाती ।।१।।
काया बहु खंड खोजते , नव निद्धी पाई ।
ना कछु आइबो ना कछु जाइबो , राम की दुहाई ।।२।।
जो ब्रह्म सोई पिंडे , जो खोजै सो पावै ।
पी पा पुनवै परम तत्व हीं , सत गुरू होय लखावै ।।

परमात्मा वन्दना : द्वितीय प्रकार की वंदनायें परमात्मा से सम्बंधित हैं। गुरू की सहायता से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। वह परमात्मा अजर अमर सर्वव्यापी, अलख निरंजन, अविनाशी है; वही सब का रक्षक है, उसकी शरण ही संसार को सुख प्रदान करती है वह समर्थ है। त्रिभुवन उसके आश्रय को महत्व देता है। [1] शरीर ही देवालय और मस्जिद है। वही ब्रह्मांड और पिंड है। प्रभु केवल प्रेम से मिलता है। [2] उस ब्रह्म का आराधन चंद्र, सूर्य, शेष महेश आदि भी करते हैं:-

मै तोहि कैसे बिसरू देवा।
ब्रह्मा, विश्नु, महेसुर ईसा, ते भी वंछे सेवा।
ऐसे सहज सुख निस दिन ध्यावैं, आतम ब्रह्म न पावै।
चांद सूर तेरी आरति गावैं, हिरदय भक्ति न आवै।।

पंछी का खोजा मीन का मारग घट घट रहा समाई।।

दरिया साहब की बानी पृ० ४१

---

१. [illegible] कृपया पिछले पृष्ट पर देखिये। नोट नं० २.
२. कृपया पिछले पृष्ट पर देखिये। नोट नं० ३.

पिछले पृष्ठ का :

१. सतगुरू की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार।।

२. पर थम वन्दौ सत्य चरन, सीस साहेब को नाया।
यह लीला अगम अपार, भेद निराला केहु पाया।।
अगम पुरूष सतवर्णी है, सोई मिले हम आय।
हंसन के सुख कारने हंद दियो हद पाय।।

दरिया साहेब चुने शब्द पद १

संतों ने वंदना के लिए 'वन्दगी ' शब्द का भी प्रयोग किया है । यद्यपि 'वन्दगी ' शब्द फारसी । अरबी के 'वंदा 'शब्द से निकला है तथापि संतों ने दोनों को प्राय: पर्यायवाची समझा है । उन्होंने कहा है 'वन्दे वन्दगी मत भूल ।' इस वन्दगी अथवा निरन्तर वन्दना से जब भक्त को प्रभु का साक्षात्कार होता है तब उसके परिणाम स्वरूप काया का वन हरा भरा हो जाता है, जिसमें सहस्त्र दल खिल उठता है और उससे चारों दिशाओं में मुक्ति के मोतियों की वर्षा होती है :

अखियां प्रभु दरशन नित लूटी ।
है तुव चरन कमल में जूटी ।
निर्गुन नाम निरंतर निरखों, अनंत कला तुम रूपी ।
विमल विमल वानी धुनि गावों कह वरनों अनुरूपी ।
विगस्यो कमल फूल्यो काया बन, झरत दसहु दिस मोती ।
कह गुलाल प्रभु के चरनन सों, डोरि लगी भर जोती ।।

गुलाल बानी पृ० ३८

<u>नाम-वंदना</u> : निर्गुण संतों ने अपनी साधना में 'नाम-स्मरण ' को अधिक महत्व दिया है । वैसे तो भगवान् के अनेक नाम प्रसिद्ध हैं परन्तु संतों का नाम प्राय: 'राम ' नाम ही है ।[१]

कबीर का एक पद इसी कोटि का है । इसमें नाम की वंदना की गई है :

नाम अमल उतरै ना भाई ।

---

१. कोटि करम पे ले पलक में जे रंचक आवै नाऊं ।
अनेक जुग जो पुनि करे, नहीं राम बिनु ठाऊं ।।
राम सो एक नाम बहु तेरा । नाम एक रमिता का फेरा ।
सतगुरू शब्द सुने जो सरना । राम नाम परे नाम न जाना ।।

और अमल छिन-छिन चढ़ि उतरै , नाम-अमल दिन बढ़ै सवाई ।
देखत चढ़ै सुनत हिय लागै , सुरत किये तन देत घुमाई ।
पियति पियाला भये मतवाला , पायो नाम मिटी दुचिताई ।
जो जन नाम अमल रस चाखा , तर गई गनिका सदन कसाई ।
कहे कबीर गूंगे गुड़ खाया , बिन रसना का करै बड़ाई ।।[१]

सहज समाधि की वंदना : कबीर की रचनाओं में 'सहज-समाधि' की वंदना के भी अनेक पद है । 'सहज-समाधि' की वंदना वस्तुतः भगवत्साक्षात्कार की अवस्था का निरूपण है । इसे संतों ने 'उन्मनी' 'तुरीया' आदि अनेक नामों से अभिहित किया है ।

संतो सहज समाधि भली ।
साईं से मिलन भयो जा दिन तें , सुरत न अन्त चली ।
आंख न मूंदूं कान न रूंधूं , काया कष्ट न धारूं ।
खुले नयन मैं हँस हँस देखूं सुन्दर रूप निहारूं ।।
कहूं सो नाम सुनूं सो सुमिरन जो कछु करूं सो पूजा ।

< < < < < < < < <

कहैं कबीर यह उन्मनि रहनी , सो परगट कर गाई ।
सुख दुख के एक परे परम सुख , तेहि में रहा समाई ।।[२]

सत्य लोक की वंदना : कबीर आदि संतों ने सत्यलोक की भी वंदना की है । जहाँ पहुँचने पर अमृतरस की प्राप्ति हो जाती है । जहाँ पर 'अनहद नाद'

---

१. कबीर वाणी पृ० ३३३ पद १८३ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

२. कबीर वाणी पृ० २६२ पद ४१ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

सुनाई पड़ता है । सत्य लोक में अनेक स्वर्ग मय महल हैं और वहाँ अमृत से भरे हुए कई तालाब तथा बाड़ियाँ है जहाँ अनंत सूर्य एवं चन्द्र का प्रकाश दीख पड़ता है । वहाँ पर हंस का सौन्दर्य एक विचित्र प्रकार का हो जाता है ।[१] जिस समय से अनहद नाद सुनाई पड़ता है तब से समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं । आँखे उन्माद में आकर घूम रही हैं और शरीर विश्रांत हो गया है ।[२] इसीलिए संतों ने इस लोक की वन्दना की है ।

<u>संत-महिमा</u> : ज्ञान मार्गी संतों ने `संतो` की भी वंदना की है । संतों की मधुर वाणी से उन्हे `अनहद नाद` का रसा-स्वादन होता है । उनके ज्ञान-युक्त वचन से जीव माया-जाल से मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।[३] कबीर दास जी ने `रैदास` जी की वंदना की है और उन्हें सर्व श्रेष्ठ सन्त की संज्ञा दी है :

सन्तन जात न पूछो निरगुनियाँ ।
साध ब्रह्मन , साध छत्री , साधै जाती-बनियाँ ।
साधन माँ छत्तीस कौम हैं , टेढी , तोर, पुछनियाँ ।
साधै नाऊँ, साधै धोबी , साध जाति है बरियाँ ।
साधन माँ `रैदास` संत है सुपच ऋषि सो भँगियाँ ।
हिन्दू तुर्क दुइदीन बने हैं कछु नहीं पहचनियाँ ।।[४]

---

१. सार वचन भाग १ पृ० १० ..७०

२. जब से अनहद घोर सुनी ।
इन्द्री थकित गलित मन हूवा , आसा सकल भुनी ।
घूमत नैन सिथिल भइ काया , अमल जुसुरत सनी ।
रोम रोम आनंद उपज करि , आलस सहज भनी ।।
चरणदास सं० बा० सं० पृ० १२०

३. सब तरन माँ सन्त बड़े हैं , सबद रूप जिन दे हियाँ ।
कहै कबीर सुनों भाई साधो , सत रूप वहि जनियाँ ।।
कबीर वाणी पृ० २३२

४. कबीर वाणी पृ० २३१

इस प्रकार निर्गुण संतों ने सत्यलोक , सहज समाधि , गुरू , परमात्मा , संत एवं नाम की भी वंदना की है ।

संसार की असारता उस परमब्रह्म की कृपा से क्षण मात्र में नष्ट हो जाती है जिससे भक्त उस तक सरलता से पहुँच जाता है ।

निर्गुण संतों की कुछ बानियाँ जिज्ञासा-प्रधान है । भक्त को आराधना करते हुये उस परमात्मा के विषय में जिज्ञासा है , उसकी प्रशंसा में उसकी वाणी सीमित है । वह उस तक पहुँचने के लिए प्रयत्नशील रहता है । यही जिज्ञासा संत कवियों ने अपने विविध छंदों में व्यक्त की है । ऐसे पद रहस्यात्मक कहे जा सकते हैं । कबीर अपने साहब को स्वयं नहीं जानते , उन्होंने कहा है :

' ना जानूं मेरा साहब कैसा है '
वह तो गूंगे के गुड़ के समान है —
कहै कबीर घर ही मन माना
गूंगे का गुड़ गूंगे जाना ।

क० ग्र० १०६ , ६८

' इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्गुण मत के मूल स्त्रोत का पता चाहें हम ~~जिस~~ जिस किसी प्रकार लगाना चाहें , सबसे अधिक उस वैष्णव संप्रदाय में मिलता है जो इससे अत्यंत निकट था और इसकी केवल कुछ ही बातों के लिये हमें इस्लामी तथा सूफी स्त्रोतों की ओर ध्यान देना पड़ता है '।[१] संतों ने अपनी ~~एक~~ रचनाओं में मुख्य रूप में गुरू को ही अधिक महत्त्व दिया है। उसका महत्त्व ईश्वर से भी अधिक है , क्योंकि बिना गुरू के परमात्मा की प्राप्ति असम्भव है । अपने निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म सम्बंधी स्तोत्रों की प्रचुरता के कारण गुरू

डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल हिन्दी-काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० ३०८

गुरू गोविंद सिंह जी को संतों में सर्व श्रेष्ठ स्तोत्रकार कह सकते हैं । परन्तु उनका जन्म रीतिकाल में हुआ था । अत: उनके विषय में पूरी विवेचन रीतिकाल में ही किया जायगा ।

ज्ञान मार्गी सन्तों की तुलना सिक्ख सन्तों से भी की जा सकती है उनके साधारण जप , अजपा जप और लिव जप निर्गुण सन्तों के जाप , अजपा जाप और अनाहत से मिलते हैं परन्तु कुछ बातों में विभिन्नता भी है । सिक्ख सन्तों ने निर्गुण एवं सगुण दोनों का समन्वय कर ब्रह्म के रूप को स्थिर किया है । " उनके विचार में ब्रह्म , निर्गुण और सगुण दोनों ही एक साथ है । गुरू नानक देव ने "सिद्ध गोष्ठी " में कहा है कि परमात्मा ने अव्यक्त निर्गुण से सगुण ब्रह्म को उत्पन्न किया और वह दोनो आपही है । "[१.]

सिख सम्प्रदाय । नानक पंथ ।

इसके प्रवर्तक गुरू नानक हैं । नानक के बाद गुरू अंगद , गुरू अमरदास गुरू रामदास एवं गुरू अर्जुन देव , इस परम्परा में आते हैं । गुरू अर्जुन देव ने इसी पंथ में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया । आगे की परम्पारा में गुरू हरराम , गुरू हरकृष्ण राम और गुरू तेग बहादुर आते हैं जिनकी त्याग एवं तपस्या से सिख सम्प्रदाय आज इस प्रगतिशील अवस्था में पहुंच गया है । नानक पंथ के भी अनेक सम्प्रदाय हो गये । ।१। उदासी ।२। नामधारी ।३। सेवा पंथी ।४। अकाली ।५। भगतपंथी ।६। गुलाबदासी ।७। निरंकारी ।८। निरंजनी गुरू नानक जी इस पंथ के प्रवर्तक हैं । उन्होंने अपने शिष्यों को एक विशिष्ट आध्यात्मिक दृष्टि देकर प्रभु भक्ति की और उन्मुख किया है । ~~सिख~~ सिखों का मुख्य ग्रंथ "गुरू ग्रन्थ साहिब " है । इसमें वाणियों का क्रम निम्न प्रकार

---

१. डा० जयराम मिश्र .. श्री गुरू ग्रन्थ दर्शन पृ० ६४

से है ।क। जपु जी । १ पृष्ठ से ८ पृष्ठ तक । सिखों के आदि गुरू नानक द्वारा रचित हैं । जपुजी के प्रारम्भ में सिक्खों का मूल मंत्र १ ओंकार से गुरू प्रसाद तक में है । सिखों में प्रातःकाल जपुजी के पाठ का विधान है । 'जपुजी' में 'स्तुति' रूप में ब्रह्माराधन होता है । ~~जिस प्रकार~~ सिख सम्प्रदाय में जैसे 'जपुजी' के पाठ बहुत महत्व है :

जपुजी - इसमें दो प्रकार की स्तुतियां हैं ।

।१। सदगुरूपरक ।२। परमात्मविषयक ।

सद्गुरू अ- 'जपुजी' के मूलमंत्र में ही निरंकार के स्वरूप का वर्णन करते हुए, गुरू नानक देव जी ने कहा है कि वह निरंकार परमात्मा 'गुरि प्रसादि' अर्थात् गुरू की कृपा द्वारा प्राप्त होता है । 'आसाकीवार' में भी इसी बात की पुष्टि मिलती है कि यह जीव जब अनेक जन्मान्तरों में भ्रमण करके निरंकार की कृपा का भागी होता है, तभी सद्गुरू का मेल होता है ।[1]

नदरि करहि जे आपणी तनदरी सतगुरू पाइआ ।
एहु जीउ बहुते जनम भरमि आ ता सति गुरि सबदु सुणाइ आ ।।[2]

गुरू रामदास ने सतगुरू में निरंकार परमात्मा की कल्पना की है :
सति गुर विधि आपि वरतदा, हरि आथै राखण हार ।।[3]

अर्जुन देव ने गुरू को परम ब्रह्म परमेश्वर कहा है

'गुरू मेरा पारब्रह्म परमेसरू ताका हिरदै धरि मनुधिआनु ।[4]

---

१. जोधासिंह ,, गुरमति निरणय पृ० १०१
२. श्री गुरू-ग्रन्थ साहिब : आसा की वार महला १ पृ० ४६५
३. वही : गउड़ी की वार महला ४ पृ० ३०२
४. वही : बिलावलु महला ५ पृ० ८२७

वास्तव में गुरू की आत्मा निरंकार स्वरूप है। अत: गुरू में स्थित उनकी ज्योति ही परमात्मा का स्वरूप है।[१]

परमात्मा : 'बीज मंत्र' का द्वितीय रूप परमात्मा की स्तुति है। 'श्री गुरु ग्रंथ साहब' में परमात्मा को तीन प्रकार के नामों से सम्बोधित किया गया है :

हिन्दू नाम, मुसलमानी नाम, नवीन नाम

(१) हिन्दू नाम : गुरुवाणी में अकाल पुरूष के लिए निर्गुणी नामों में अच्युत, परब्रह्म, अविनाशी, पूर्ण, सर्वमय, निरंकार, निर्गुण अपरंपार, सर्वाधार, अयोनि, स्वयंभू, अकाल मूर्ति, अव्यक्त अगोचर आदि हैं।[२] सगुणनामों में मधुसूदन, नारायण वासुदेव, मुकुंद, जगन्नाथ, गोपाल, धनंजय,[३] कृष्ण,[४] राम, श्रीधर[५] आदि।।

(२) मुसलमानी नाम : अल्लाह, कादिर, करीम, रहीम,[६] खुदा, खालिक, मिहरबां, मौला, पीर, पैगम्बर, शेख, पाक[७] आदि। ~~नवीन नाम~~

(३) नवीन नाम – मित्र, मति, प्रीतम, पिआरा, सजण, यार[८] असिकेतु, असिपाण,[९] खड्गकेतु, महानकाल, सर्व लोह,[१०] महालोह, सर्वकाल आदि।। अघम और मजहब नाम भी आया है।

---

१. डॉ॰ जयराम मिश्र – श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन पृ॰ ५५

२. अकाल मूरति गिं सुकदे नाही खउ।
अविनासी, अविगत, अगोचर सैभु की किन्तु तुम्ह ही है लगा।। मारु महला पृ० १०८२

३. धनंजय जलिथलि है महीथै।।१२।।२।।११।। मारू महला पृ० १०८२, ८३

४. निरहारी के सब निरवैरा।।३।। ६।। १३।। माझ महला ५ पृ० ९८

५. दुख हरणदीन सरण श्रीधर चरनकमल आराधि थै।। राग गउड़ी महला ५ पृ० २४८

६. सबहुनी आवण जावणी मुकामु एकु रहीमु।। सिरीरागु महला १ पृ० ६४

७. दिवाका मालकुकरे हाकु। कुरान कतेब ते पाक

८. शेरसिंह, गुरु-भक्ति-दर्शन पृ० १६०

९. वही पृ० १६०

१०. वही पृ० १६१

~~१०. हैं० विष्णुपुराण तृतीय अंश~~

भगवान् के लिए सिक्ख गुरुओं द्वारा प्रयुक्त अधरम और `अमजहब` नाम उसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं, जिसमें वेदों का `व्रात्य` अथवा पुराणों के `नग्न` आदि शब्द हैं। `व्रात्य` की चर्चा पहले हो चुकी है। `नग्न`[1] भी इसी वर्ग का शब्द है जो निस्त्रैगुण्यता, शुद्धता, जीवन्मुक्तता आदि अवस्थाओं का सूचक है। वास्तव में `जो ब्राह्मणादि वर्ण स्वधर्म को छोड़कर पर धर्मों में प्रवृत्त होते हैं अथवा हीन वृत्ति का अवलम्बन करते हैं वे `नग्न` कहलाते`।

। दे० विष्णु पुराण .. अंश ३ ।

ऋग्यजः साम संज्ञेयं त्रयी वर्णा वृत्ति द्विज ।
एता मुञ्च ्फ ति यो मोहात्स नग्नः पातकी स्मृतः ।।५।।
त्रयी समस्त वर्णानां द्विज संवरणं यतः नग्नो भवत्यु
ज्झिताया मतस्तस्याम संशयं ।।६।।

सिक्ख सन्तों ने परमात्मा को तीन रूपों में माना है :

निर्गुण, सगुण, उभय

निर्गुण ब्रह्म के सूक्ष्म रूप का अनुभव नानक ने अधिक किया है। जपुजी में उन्होंने कहा है :

ताकी आखला कथी आना जाहि ।
जे को कहै पिछै पछताई ।।जपुजी गउड़ी ।।३६ ।।

गुरुओं ने अंत में स्पष्ट कर दिया है :

तेरी महिमा तू है जाणहि । आपण आपतू आपि पछाणहि ।।

३।।४२।। ४६ ।। रागु माझ, महला ५

पृ० १०८

गुरुओं ने सगुण ब्रह्म को भी दो रूपों में व्यक्त किया है :

।१।　　विराट स्वरूप का वर्णन

।२।　　अन्य गुणों का वर्णन

१. विराट स्वरूप में उन्होंने स्थान-स्थान पर इस रूप का वर्णन किया है । इसे शुद्ध स्तोत्र कहा जा सकता है और इसमें 'वंदना' के तत्त्व मिलते हैं ।

गगन मैं थालु, रवि, चंदु दीपक बने, तारिका मंडल जनक मोती ।
धूपु मलानलो, पवणुचवरो करे, सगल बन राइ फूलन्त जोती ।।१।।[1]

२. परमात्मा के अनेक प्रकार के अनंत असीम गुणों का वर्णन गुरु गोविंद सिंह के स्तोत्रों में मिलता है। वस्तुत: गुरु गोविंद सिंह ने विशेष रूप से । निर्गुण और सगुण विषयक मतभेद दूर कर दोनों के समन्वय का प्रयत्न किया था । श्री गुरु ग्रंथ साहिब के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है ।

निरगुण सरगुण आपे सोई ।
ततु पछानो सो पंडित होई ।।३१।।३१।। ३२[2]

इस प्रकार सिक्ख गुरुओं के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परमात्मा निर्गुण भी है,। सगुण भी है तथा निर्गुण, सगुण दोनों ही है । पर वह अवतार धारण नहीं करता । वह एक है और अजन्मा है ।[3]

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहब .. सोहिला, रागु धनासरी महला १ पृ० १३

२. वही　　　माझ महला ३ पृ० १२८

३. डा० जयराम मिश्र .. श्री-गुरु-ग्रंथ-दर्शन　पृ० ६५

उपनिषदों और भागवत में भी इसी रूप की कल्पना है । [1] श्रीमद् भागवद् गीता में भी इसी रूप को स्पष्ट किया गया है । [2] उसके अविनाशी और लीलाधारी रूप की भी गुरू ग्रन्थ साहब में व्याख्या हुई है :

नाना रूप नाना जाके रंग । नाना भेख करहिं इक रंग ।।
नाना बिधि कीयो बिसथारू । प्रभु अविनासी एकं कारू ।।
नाना चलित करे खिन माहिं । पूरि रहिओ पूरब सब ठाईं ।।

। गउड़ी सुखमनी , महला ५ पृ० २७४।

उन्होंने परमात्मा को सर्व व्यापी , सर्वान्तर्यामिन् , सर्व शक्तिमान् , दाता , भक्त वत्सल , पतित पावन , परम कृपाल , शील बन्त , सखा सहायक , माता पिता , स्वामी , शरण दाता आदि विशेषणों से ~~कू~~ विभूषित किया है ।

<u>परमात्मा सर्व व्यापी है :</u>

करण कारण समरथ प्रभु जो करे सो होई ।
खिन महि थापि उथा पदा तिस बिन ~~नहिं~~ नहिं कोई ।। पौड़ी
वार जैत सरी महला ५

वह भक्त-वत्सल और पतितोद्धारक भी है :

करि किरपा प्रभि आपणी अपने दास रखि लीए ।।

विलावलु महला ५ पृ० ८१५

---

१. मुन्डकोपनिषद , मुन्डक २ खन्ड १ मंत्र ४
2. भगवद् गीता . अध्याय 11 श्लोक 15
~~२. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन , डा० जय राम मिश्र~~

~~पृ० ६५~~

जप : कबीर आदि संतों के सुमिरन की भांति गुरुओं का `जप ` भी है। `जप ` में नाम-स्मरण किया जाता है। इसमें एक प्रकार से `सुमिरिनी ` के तत्व विद्यमान हैं। यह तीन प्रकार का है।

साधारण जप , अजपा जप , लिव जप। कबीर आदि संतों के भी इसी प्रकार के भेद हैं।

साधारण जप : यह जिव्हया से प्रारम्भ होता है। यह साधारण होते हुए भी शनैः शनैः असाधारण प्रभाव दिखाता है। रसना के जप से धीरे धीरे तन मन दोनों ही निर्मल हो जाते हैं।[1]

अजपा जप : इसमें जिव्हया का काम समाप्त हो जाता है और श्वास प्रश्वास के आधार पर प्रारम्भ होता है। जैसे कि :

अजपा जापु जपै मुखि नामा ।।१६।।१।।

बिलावलु महला १

पृ० ८४०

लिव जप : इसमें वृत्ति द्वारा जप होने लगता है। जिव्हया और मन एक निष्ठ और केन्द्रीभूत हो जाते हैं।[2] श्री गुरू नानक ने इसे आध्यात्मिक रूप में स्पष्ट किया है :

गुर मुखि जागि रहे दिन राती । ३ ।
साचे की लिवगुर मति जाती ।। ४ ।।[3]

सिख संप्रदाय कबीर द्वारा प्रवर्तित निर्गुण संप्रदाय से ही विकसित हुआ है। इसलिए दोनों में अनेक रूपों में समानता मिलती है।

---

१. रसना सचा समरिऐ , मनु तनु निरमल होइ। सिरीरागु महला ५ पृ० ४९

२. श्री गुरू ग्रंथ दर्शन पृ० ३४४

३. वही : मारू सोलहे महला १ पृ० १०२४

प्रेममार्गी परम्परा में स्तोत्र

सूफियों की अधिकांश कृतियां प्रबंध काव्यों के रूप में हैं । उनके प्रबंध काव्यों में भारतीय महाकाव्यों की शैली का अनुसरण नहीं किया गया है । वे फारसी की मसनवी परम्परा का अनुगमन करते हैं । उन्होंने अपने काव्यों में मसनवी शैली के आधार पर स्तुतियां की हैं , परन्तु वे स्तुतियां विभिन्न कोटि की हैं । उन्हें केवल परमात्मा सम्बन्धी ही नहीं कहा जा सकता वरन् वे विभिन्न विषयों से सम्बंधित हैं । इन स्तुतियों की हम निम्न लिखित श्रेणियां निर्धारित कर सकते हैं :

।१। परमात्मा सम्बन्धी ।२। मुहम्मद सम्बंधी ।३। पीर पैगम्बर सम्बन्धी ।४। गुरु सम्बंधी ।५। शाहे-वक्त सम्बंधी ।६। देवी-देवता सम्बन्धी ।शिव । ।७। स्थान ।धाम-। प्रशंसा

।१। परमात्मा सम्बंधी :

सूफी कवियों ने ज्ञानाश्रयी संतों की भांति निर्गुण ब्रह्म का ही चिंतन किया है । वह सर्व व्यापक है । " वे ईश्वर को निर्गुण , निराकार एवं सर्वव्यापक मानते हैं "।[१] वह घट-घट वासी है । वह निरंजन और ओंकार है । ओंकार रूप का महत्त्व संत कवियों का अनुकरण कहा जा सकता है । उसकी आराधना नाग-नर भी करते हैं :

त्रिभुवन पूरि अपूरि कै एक जोति समठाऊ ।
जोतिहि अनवन मूरति मूरति अनवन नाउं ।।
सुरनर नाग जहां लगि अहहीं । कोटि बरिस जौ अस्तुति करहीं ।
ताके सम पछिताई कहाहीं । जस से तस हम जानहिं नाही ।[२]

---

१. Dictionary of Islam (1815)

२. डा० माता प्रसाद गुप्त मधुमालती पृ० २

जायसी ने भी अपने पद्मावत में उसके गुणों का गान इस प्रकार किया है :

सवरौं आदि एक करतारू । जेइ जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू ।।
कीन्हेसि प्रथम ज्योति परगासू।कीन्हेसि तेहि परीति कवि लासू ।। [1]

कवि उससे कृपा की आकांक्षा करता है :

कै किरपा मोहि पार उतारो ।
दया-दृष्टि मोहि ऊपर डारो ।।

कहीं कहीं परमात्मा के अद्वैत रूप की ओर भी संकेत किया है । ज्ञान मार्गी कवियों की भांति[2] उनका ईश्वर भी एक है और हृदय में निवास करता है ।[3] उसका अलख रूप भी चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है । संतों की रहस्यात्मक भावना का पूर्ण साम्य यहां पर लक्षित होता है ।[4] जायसी ने एक स्थान पर उसके विषय में लिखा है :

---

१. आचार्य शुक्ल .. जायसी ग्रन्थावली पृ० १
२. नूर मुहम्मद .. इन्द्रावती पृ० ६
३. ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों चकमक मे आगि ।
तेरा साईं तुझमें जागि सके तो जागि ।। साखी
४. सो करता सब माह समाना । परगट गुपत जाइ नहि जाना ।
चित्रावली पृ० १
सिरजन हार छिपाना रहा । आपुहि फेर चिन्हावै चहा ।।
इन्द्रावती पृ० ६
नहि अस ठाँव जहां वह नाहीं । पूर रहा चौरागढ माहीं
हंस जवाहिर पृ० ४
गुपुत रहै परगट जग बेरसै सरब व्यापक सोइ ।
दूजा कोई न आहै और भवानहि होई ।। मधुमालती पृ० ४
ना जानूं मेरा साहब कैसा है। कबीर

न वह मिला नवे हरा अइस रहा भर पूरि । 1.
पिरिस्ट वंत कहं नीअरे अंध मुरुख कहं दूरि ।।

अति अपार करतार करना । वरनि न कोई पारइ वरना ।।
सात सरग जौं कागर करई । धरती सात समुंद मसि भरई ।। 2.

इस प्रकार सूफियों ने ब्रह्म के यथार्थ रूप को अभिव्यंजित करने का प्रयत्न किया है ।

।2। मुहम्मद सम्बंधी स्तुतियां :

प्रत्येक सूफी कवि ने अपने ग्रन्थ में मुहम्मद साहब की वंदना की है :

1. चारि मीत जौं मुहम्मद ठाऊं ।
चहुं कहुहूं जगनिर मर नाऊं ।। पदमावती
2. नाउं मुहम्मद त्रिभुवन राऊ ।
ओहिलागि भये सिरिस्ट कर चाऊ ।। मधुमावली पृ० 6
3. निस दिन सुमिरू मुहम्मद नाऊं ।
जासौं मिलै सरग महं ठाऊं ।।

इन्द्रावती पृ० 66

(मुहम्मद साहब ने ही मुसलमानों को एक सूत्र में संगठित किया था । इसीलिए कवि उनकी स्तुति करता है)

---

1. पदमावत 1।8
2. वही पृ० 2।1

।३। पीर-पैगम्बर सम्बन्धी :

सूफी संतों ने अपने पीर और पैगम्बरों की भी प्रार्थना की है। इन प्रसंगों में उन्होंने खलीफाओं की भी स्तुति प्रशंसा की है :

उस्मान ने अपनी पुस्तक चित्रावली में स्तुति के उपरान्त पैगम्बर और खलीफों की, बादशाह की तथा शाह निजामुद्दीन और हाजी बाबा की प्रशंसा लिखी है।[१]

जायसी ने भी अपनी पूर्व परम्परा का अनुसरण किया है और चार की प्रशंसा की है :

गुरु मोहदी सेवक मैं सेवा। चलै उताइल जिन्ह कर खेवा।
अगुआ भयउ सेख बुर हानू। पंथलाइजेहिं दीन्ह गिआनू।।
अलहदाद भल तिन्हकर गुरू। दीन दुनिय रोसन सुर खरू
दानि आल गुरु पंथल लाये। हजरति ख्वाज खिजिर तिन्ह पाये।।८।

चित्रावली में हाजी बाबा की प्रशंसा की गई है :-

बाबा हाजी पीर अपारा। सिद्ध देत जेहि लाग न पारा।।
जे मुख देखा ते सुख पावा। परसि पाय तन ताप जगावा।।[२]

जायसी ने पीर सैयद असरफ जहाँगीर की भी प्रशंसा की है :

जहाँगीर ओई चिस्ती निह कलंक जस चाँद।।
ओइमखदूम जगत के हौं उन्हके घर बाँद।।१।१८[३]

---

१. आचार्य शुक्ल, हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० १०६
२. चित्रावली पृ० २०
३. पदमावत १।१८

।४। गुरू सम्बन्धी स्तुतियाँ :

पूर्व काल से सब संतो ने गुरू को महत्व दिया है । बिना गुरू की कृपा से ज्ञान प्राप्ति असम्भव कही जा सकती है । गुरू ही ज्ञान के पथ का निर्देशन करता है । बताया जा चुका है कि कबीर आदि संत उसे परमात्मा से भी श्रेष्ठ मानते हैं ।[1] बिना उसके ज्ञान दर्शन नहीं हो सकता है ।[2] हम ब्रह्म का अनुभव नहीं कर सकते ।[3] गुरू की दृष्टि प्रात: कालीन सूर्य की भाँति है ।[4] सूफियों ने भी गुरू के प्रति ऐसी ही श्रद्धा एवं भक्ति अभिव्यक्त की है ।

।५। शाहेवक्त की स्तुति :

समस्त सूफी प्रबंधो में अपने समय के सुलतानों की भी प्रशंसा की गई है । इस विषय में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "प्राय: सभी सूफी कवि प्रारम्भ में मुहम्मद और परमात्मा की स्तुति करते हैं, अपने गुरू या पीर का नाम बताते हैं और पंथ का रचना काल भी बता देते हैं । शाहे वक्त अर्थात् समकालीन बादशाह का उल्लेख नियमित रूप से सूफी कवियों की रचनाओं में प्राप्त होता है"।[5]

शेरशाह दिल्ली सुल्तानू । चारहु खंड तपै जस भानू ।
ओही छाज राज औ पाटू । सब राजै भुइँ धरा ललाटू ।।

पदमावत .. पृ० १

१. गुरू गोविंद दूवूं खड़े, काके लागूं पाँय ।
२. बलिहारी गुरू आपकी जिन्ह गोविंद दियो बताय ।। कबीर
३. जो मर जनम करै विधि जापा । बिनुबोहिं नाम होहिसब न लाधा ।
चित्रावली पृ० ५
४. बिना गुरू को निरगुन पावा ।। जायसी ग्रन्थावली पृ० ३४१
४. शाह निजाम पीर सिध दाता । दिष्टते जजिमि रवि परमाता ।चित्रावली पृ० ५०६
५. डा० हजारी प्रसाद दिवेदी .. हिन्दी-साहित्य पृ० २६७

मुहम्मद शाह दिल्ली सुल्तान् । कामन गुन श्रोहि केरे बखान् ।
छाजै पाट छत्र सिरताज् । नावहिं सीस जगत कै राज् ।।

..हंस जवाहिर पृ० १

करौ मुहम्मद साई बखान् । है सूरज देहली सुल्तान् ।
धरम पंथ जग बीच चलावा । निवरन सबरे सा दुख पावा ।

.. इन्द्रावती पृ० १

देवी-देवताओं की स्तुतियां .. प्रेम मार्गी सूफी कवियों ने अपनी कृतियों में हिन्दुओं में प्रचलित कथाओं को ही उन्हीं की भाषा में लिखा है । इसलिए उनके प्रबंध-काव्यों के बीच-बीच हिन्दुओं के देवी .देवता पात्र के रूप में आते हैं । जायसी के 'पद्मावत ' में शिव , पार्वती लक्ष्मी आदि आधि दैविक पात्र के रूप में आये हैं । प्रसंगानुसार इनकी स्तुति का विधान भी किया गया है । 'पद्मावत ' में रत्नसेन ने शिव की स्तुति इस प्रकार की है ।

नमो नमो नारायन देवा । का मोहि जोग सकौं का सेवा ।
तू दयाल सबके मन माहीं । सेवा कोटि आस तोहि नाहीं ।।
न मोहि गुनन जीभ रस माता । तूं दयाल गुन निरगुन दाता ।
पुरवौ मोरि दास की आसा । हौं मारग जोवौं हरि स्वांसा ।
तेहि बिधि बिनै न जानौ , जेहि बिधि अस्तुति तोरि ।
करु सुदृष्टि और किरिपा , हिंछा पूजै मोरि ।।[1]

अन्य हिन्दू पात्रों को भी आवश्यकता पड़ने पर अभीष्ट सिद्धि अथवा कष्ट निवारण के लिए देवी-देवताओं की स्तुति करनी पड़ती है । सूफी कवियों ने ऐसे स्तोत्रात्मक प्रसंगों में प्राय: उनकी मर्यादा एवं हिन्दू-भावना का पूरा पूरा ध्यान रखा है ।

स्थान की प्रशंसा ..

---

१. पदमावत १७।१।१५६

जिस प्रकार सगुण भक्तों ने भगवान के धामों की स्तुतियां लिखी हैं, उसी प्रकार सूफी कवियों ने प्राय: प्रधान नायिका के निवास स्थान को आध्यात्मिक गौरव से मंडित माना है और प्रतीक शैली में उसके महत्त्व की व्यंजना की है। कबीर के "सत्य-लोक" की भांति जायसी ने सिंहल दीप का वर्णन किया है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में सिंहल गढ़ और यह शरीर एक दूसरे के प्रति रूप हैं। सिंहल गढ़ का वर्णन कौम साधना की ही व्याख्या है। इन जानी पहचानी परिभाषाओं के साथ ही बड़ी सरलता से जायसी सूफी मत की साधना के चार पड़ावों का भी उल्लेख कर देते हैं।[1]

नवौं खंड नव पैवरी औतहँ वज्र केवार।
चारि बसेरे सौं चढ़ै सत सौं चढ़ै जो पार ।।२।१७।४१

नखन्ध नव पवरी बाँकी नव खन्हा। नवहु जो चढ़ै जाइ ब्रह्मंडा।
गढ़त स्वांक जैसितो रिकाया। परखि देखिहै ओहि की छाया।

सिंहल के वृक्षों की छाया हमें एक प्रकार की शान्ति प्रदान करती है :

जिन्ह यह पाई छाँह अनूपा।
बहुरि न आइ सही यह धूपा ।।७।३।२७

परमात्मा का नारी रूप और नख शिख :

सूफियों ने ईश्वर की उपासना प्रियतमा रूप में की है। परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार "परमात्मा को प्रेमपात्री के रूप में स्वीकार करके उसे प्राप्त करने की भावना सूफी-सम्प्रदाय की एक प्रमुख विशेषता समझी जाती है।[2] उसी का सौन्दर्य समस्त जगत में व्याप्त है। "ईश्वर को प्रेमिका मान कर उसके लिये जीवन की आकुलता का वर्णन वैष्णव, सहजयान, सूफी मत या ईसाई मत सबकी विशेषता है। सब धर्म इसमें

---

१. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पद्मावत की भूमिका पृ० ४२
२. परशुराम चतुर्वेदी, भक्ति-साहित्य में मधुरोपासना पृ० २८

एक मत है कि स्त्री से बढ़ कर स्पष्ट , साक्षात , प्रेममय और मधुर प्रतीक हमारे इसलोक में पुरूष के लिए दूसरा नहीं । उसी प्रतीक की व्यञ्जना से प्रेम-मार्ग और प्रेम-काव्य के उपकरणों का निर्माण किया गया है ।[1] सूफियों का समस्त साहित्य प्रतीक रूप में है ।[2] प्रेम काव्यों में सूर्य चन्द्र के प्रतीक को कवियों ने नायक नायिका के रूप में अभूतपूर्व माधुर्य प्रदान किया है ।[3] मुहयिन फैज काशानी ने 'रिसालयी मिशवाक' में प्रतीकों को इस प्रकार स्पष्ट किया है " रूख चेहरा कपोल । परम सौन्दर्य के ऐश्वर्य अर्थात् दयालुता , प्रकाश ,।परम सत्य आदि की अभिव्यक्ति । जुल्फ । परम ऐश्वर्य के सर्व शक्तिमान स्वरूप की अभिव्यक्ति अर्थात् सर्वग्रासी , महाकाल , अन्धकार परम सत्य को छिपाने वाला दृश्य मान जगत स्वरूप पर्दा खाल-तिल , वास्तविकता , एकत्व का केन्द्र विन्दु जो ओट में है अतएव काले रंग द्वारा प्रकट किया जाता है । खत-कपोल में बनने वाला गउठ । आध्यात्मिक स्वरूपों मे परम सत्य की अभिव्यक्ति । चश्म आंखे । परमात्मा का अपने दासों और उनके रूप भाव को देखना । अब रू भौंहे ।परमात्मा के सिफ्त जो उसके जात को छिपाये हुए हैं ।: लव-होंठ : । जिलाने वाली परमात्मा की शक्ति । शराब प्रियतम के दर्शन से भावा विष्टावस्था का उत्पन्न होना । जब तर्क आदि करने की शक्ति का अवसान हो जाता है । साकी सत्य जो अपने को सभी व्यक्त रूपों में अभिव्यक्त करना पसंद करता है । खुम-परमात्मा के नामों और गुणों का प्रकट होना, खुमखाना समस्त दृश्य और अदृश्य जगत जो परमात्मा के प्रेम और सत्ता की शराब अपने में लिये हुए है । पैमाना जगत का प्रत्येक अणु

---

१. तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिंहल , बुधि पदमिनी कीन्हा
   गुरू सुआजेरे पंथ दिखावा । बिनु गुरू जगत को निरगुण पावा
   नागमती यह दुनियाधंधा । बांचा सोई नरहि चित बंधा ।
   राघव दूत सोई सैतानू।माया अलाउदीं सुलता ।। । पदमावत

२. पदमावत .. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पृ० ४१

जो अपनी शक्ति के मुताबिक उस प्रेम की शराब को ग्रहण कर पाता है। बुत कभी परम सौन्दर्य । परमात्मा । के लिए, कभी कामिल । पूर्ण मानव । के लिए कभी मुर्शिद । गुरू । तथा कभी कुत्ब के लिए इसका प्रयोग किया गया है। कभी परमात्मा के सिवा अन्य उपास्य के लिए भी इस का प्रयोग हुआ है।[1] इसी भावना से प्रेरित होकर सभी सूफी कवियों ने काव्य में अपनी नायिकाओं के सौन्दर्य का वर्णन किया है :

यह है रूप बुतय है कि छिपाना । यहै है रूप सब सृष्टि समाना ।
यह है रूप सकति अरु सिवौ । यह है रूप त्रिभुवन करजीवौ ।।
यह है रूप निरखन बहु भेषा । यह है रूप जगर्क नरेसा ।
यह है रूप त्रिभुवन जग परसे, यहहि पाताल अकास ।
सोहै रूप प्रगट मैं देखौ, कहा हवास । [2]

वह रूप सौन्दर्य संसार का केन्द्र बिन्दु है :[3]

शिव जी भी उस ज्योति के सामने नत हैं :

अटि पवारा जैस परेवा । भरमाई और को देवा ।।
पदमावती के नैत्र का वर्णन कितना रमणीय है :

नैन बांक सरि पूजन कोऊ। मानस मुँद अस उलथ हिंदोऊ ।
राते कवल करहिं अलि भवां । घूमहिं मांति चहहिं उपसवां ।।
उठहिं तुरंग लेहिं नहिं बागा । चाहहि उलथि गगन कहँ लागा ।

---

१. राम पूजन तिवारी, सूफी मत – साधना और साहित्य पृ० ५२३ ..२४
२. मधुमालती पृ० ५
३. कहा मान सर चाह सो पाई ।
पारस रूप रहा लगि आई ।।
भा निरमल तेन्ह पायन्ह परसें ।
पावा रूप रूप के परसे ।। पदमावत
६५।१..२

पवन झकोरहिं देहि हलोरा । सरग लाइ भुइं लाइ बहोरा ।।[1]

अनुराग-बाँसुरी में भी कवि उसी रूप का वर्णन करता है :

सर्व मंगला देखि असीसै । चाहै लोचन मध्य बईसै ।
कुंतल झारत फांदा छोरे । चख चितवन सों चपला मोरे ।।[2]

यद्यपि सूफी कवियों द्वारा सौन्दर्य-वर्णन आपततः लौकिक है परन्तु अपनी अतिशयता और व्यंजकता के कारण यह सर्वथा अलौकिक बन जाता है । आचार्य शुक्ल के मतानुसार ' क्या लोक-पक्ष में , क्या आध्यात्म-पक्ष में दोनों ओर उसकी गूढ़ता, गम्भीरता और सरसता सरस दिखाई देती है ।[3] ' डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका विश्लेषण इस प्रकार किया है ' ।१। रूप-सौन्दर्य के सृष्टि-व्यापी प्रभाव की लोकोत्तर कल्पना की गई है अर्थात् केशों की दीर्घता सघनता और श्यामलता के वर्णन के लिए परम्परा से प्रचलित पद्धति के अनुसार केवल सादृश्य पर जोर न देकर कवि ने उसके लोक-व्यापी प्रभाव की ओर संकेत किया है : जैसे 'बेनी छोरि झार जौ बारा , सरग पताल होइ उजिराया 'अर्थात् जब पद्मावती अपनी बेनी खोलकर केश झाड़ने लगती थी तो स्वर्ग और पाताल उद्भाषित हो उठते थे ; और 'उनई घटा परी जग छाँहा ' इस में केशों की घटा कहा तो केवल सादृश्य का संकेत करता है किंतु सारे संसार को उससे छाँह और शीतलता देता है । इसी प्रकार प्रत्येक अंग के उपमान केवल सादृश्यगत साधारण धर्म को ही बता कर विरत हो जाते बल्कि उसके लोक-व्यापक प्रभाव को भी बता देते हैं । ।२। जायसी ने इस रूप को पारस कहा है । पारस रूप अर्थात् जिसके स्पर्श से इस जगत के रूप में अद्भुत माधुर्य आ जाता है । ।३। रूप-वर्णन के प्रसंग में जायसी अत्युक्तियों पर उतर आते हैं । परन्तु अधिकांश स्थलों में उत्प्रेक्षा

---

१. पदमावत ४।५।१००
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास । आचार्य शुक्ल पृ० ११४
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास । आचार्य शुक्ल पृ० १०१

और अतिशयोक्तियों के द्वारा वस्तु की व्यंजना होकर संवेदना या अनुभूति की व्यंजना होती है। इस लिए सहृदय का चित्त वस्तु की और जाने ही नहीं पाता। फिर कवि परोक्ष सत्ता की और इशारा करता है और इस प्रकार सहृदय मन प्रस्तुत विषय से हट कर अप्रस्तुत परोक्ष सत्ता की और जाता। रहता है। इस प्रकार जायसी के ~~सादृश्य~~ सदृश्य मूलक अलंकार, सौन्दर्य के सृष्टि व्यापी प्रभाव को, और हार्दिक संवेदना को प्रकट करने में समर्थ हुए है[1]. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस रूप-वर्णन के विषय में लिखा है :

'सृष्टि में व्यापक सौन्दर्य है, वही नारी रूप में एक केन्द्र पर अभिव्यक्त होता है। उसके साथ मनसा, वाचा, कर्मणा: साक्षात् सम्मिलन यही श्रृंगार का स्थूल मार्ग है। ऐसे ही जो विश्व में व्याप्त परमात्मा की प्रकाश या चैतन्य ज्योति है, वही मानव के हृदय-केन्द्र में है। दोनों के सर्वात्म ऐक्य का स्वयं साक्षात्कार ही मानव का लक्ष्य है। जीव परमात्मा के चिदंश की ही संज्ञा है। दोनों मे एक दुसरे के प्रति आकर्षण और उमंग है।[2] उन्होंने पुन: कहा है 'वही एक रूप विश्व का प्रत्येक रूप बन गया है। पदमावती उसी चिदात्मक ज्योति का प्रतीक है।[3] 'पदमावती विश्व व्यापी महा ज्योति का ही नाम है। उसके अनेक प्रतीक ब्रह्मान्ड में व्याप्त हैं। वही ~~ज्~~ ज्योति चन्द्रमा के रूप में आकाश मे उदित होती है। वही शिव लोक की मणि है जो सिंहलदीप को प्रकाशित करने के लिये उत्पन्न होती है।[4] ~~ऐसी स्थिति में अन्य आलोचनाएं कब सिद्ध होती है। कल्पनिमल~~ 'कथा में जो 'नख शिख' तथा ऐसी ही अन्य बातों का वर्णन है उससे आध्यात्मिक पक्ष को कुछ धक्का सा लगता प्रतीत होता है। परन्तु सूफियों के मत में लौकिक प्रेम अथवा 'इश्के मजाजी' आध्यात्मिक प्रेम का साधन है। अत: 'नख शिख' आदि का वर्णन इस ग्रन्थ में

१, डा० हजारी प्रसाद दिवेदी ..हिन्दी साहित्य पृ० २७३ . ७४
२. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल .. पद्मावत । भूमिका । पृ० ५१
३. डा० वादेव शरण अग्रवाल पृ० ७
४. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पृ० ३८

असमंजस उत्पन्न करता है ।[१] डा० विमल कुमार जैन का यह कथन उचित नहीं है । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये लिखा है "कवि ने जिस पूर्व पारस रूप का वर्णन किया है वह अपना उपमान आप ही है । कवि जब पदमावती के रूप का वर्णन करने लगता है तब उसका सम्पूर्ण अन्तर रस हो कर ढरक पड़ता है । पदमावती में वही पार स्वरूप है । पदमावती के रूप-वर्णन के बहाने भक्त कवि ने वस्तुत: भगवान् के प्रभाव का वर्णन किया है ।"[२] अत: यह कहा जा सकता है कि सूफी कवियों ने इस प्रकार 'नख शिख' वर्णन करके स्तोत्र-साहित्य में एक नवीन शैली की स्थापना की है । इष्ट के सौन्दर्य वर्णन में उन्हें उसका दर्शन होता है जो सूफी साधना का मूल तत्व है । 'नख शिख' वर्णन के माध्यम से सूफी अपने इष्ट देव का ऐसा कलात्मक निरूपण करते हैं जो उन्हें श्रेष्ठ स्तोत्रकारों की पंक्ति में बिठा देता है ।

<u>सूफी साहित्य की तात्विकता :</u>

सूफी मत में प्रेम का अत्यंत महत्व पूर्ण स्थान है ।[३] यही प्रेमाख्यानक काव्य की विशेषता है । इसी को हम निष्काम प्रवृत्ति कह सकते हैं क्योंकि इस मत में प्रेम ही धर्म है और कर्म भी । या यों कहा जा सकता है कि सूफी मत ही प्रेम-मय है । इस प्रेम के साथ इसका नशा भी प्रधान है ।

---

१. डा० विमल कुमार जैन, सूफी मत और हिन्दी-साहित्य पृ० १२१

२. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी मध्य कालीन धर्म-साधना पृ० २०६

३. सत्यदेव चतुर्वेदी .. हिन्दी-काव्य की मूल प्रवृत्तियां और उनके मूल स्रोत पृष्ठ ४४

इसके कारण संसार की विस्मृति हो जाती है, शरीर का कुछ ध्यान नहीं रह जाता। परमात्मा की ही "लौ" लग जाती है। एक बात और भी स्पष्ट कर देनी आवश्यक है कि अनुराग के आधार नारी के रूप को ही इस मत ने ईश्वर माना है। भक्त पुरूष बन कर उस स्त्री की प्रसन्नता के लिये नाना प्रकार की चेष्टा करता है। उससे प्रेम की भीख मांगता है।[1] आचार्य शुक्ल का कथन है कि हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और शुद्ध अद्वैतवाद पाया जाता है तो जायसी में, जिनकी रमणीयता और भावुकता उच्चकोटि की है।[2] अतएव यह कहा जा सकता है कि सूफियों ने श्रेष्ठ भावात्मक स्तोत्र-साहित्य की रचना की है। उनका "नखशिख" भावात्मक रहस्यवाद का बड़ा मनोरम रूप प्रस्तुत करता है।

राम-भक्ति-साहित्य में स्तोत्र

उत्तर भारत में जिस भक्ति आन्दोलन का प्रवर्तन पन्द्रहवीं शताब्दी के आस-पास समकालीन भारतीय जनता के लिए अमर आश्वासन के रूप में हुआ था उसका सर्व प्रथम श्रेय स्वामी रामानंद के समर्थ व्यक्तित्व को दिया जाता है। डॉ० ग्रियर्सन जैसे विद्वानों ने इसे एकाएक बिजली के समान जगमगाने वाला प्रकाश माना है, किंतु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अनेक पुष्ट प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि उसकी भारतीय विचार धारा के मेघ शदियों पूर्व उठ रहे थे।[3] आंग्ल मनीषी विल डूरैन्ट ने उन्हें अपने युग का सर्व श्रेष्ठ एवं सर्वाधिक सामर्थ्यवान् धार्मिक नेता कहा है,

---

१. सत्यदेव चतुर्वेदी ..हिन्दी-काव्य की मूल प्रवृत्तियां और उनके मूल स्रोत पृ० ४४

२. आचार्य शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली पृ०

३. डा० ग्रियर्सन। हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास। अध्याय २ पृ० ६६ अनुवादक किशोरी लाल गुप्त प्रथम संस्करण

और उनके अनुसार 'यह उन्हीं का व्यक्तित्व है कि जिसके ~~स्त्रो~~ स्त्रोत से निर्गुण और सगुण साधनाओं की दो प्रबल धाराएं उत्तर भारत में एक साथ प्रवाहित हो उठीं ।' कहना न होगा कि हिन्दी साहित्य की निर्गुण तथा सगुण काव्य धाराओं की उप जीव्य उपर्युक्त द्विविध साधनाएं ही थी । विद्वानों ने हिन्दी भक्ति काव्य की निर्गुण धारा तथा सगुण धारा की राम भक्ति शाखा को स्वामी रामानंद से सम्बंधित माना है । उनके जिन अन्य भक्ति मार्ग के प्रवर्तक आचार्यों तथा धार्मिक नेताओं ने उपर्युक्त आन्दोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया है, उनमें महाप्रभु चैतन्य तथा स्वामी वल्लभाचार्य जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । हिन्दी काव्य को समुन्नत एवं भक्ति रस से परिप्लुत करने वाली कृष्ण भक्ति शाखा के इन दो प्रधान प्रेरकों के अतिरिक्त निम्बार्क मत के भक्तों एवं हरिदास, हित हरिवंश महान् संतों ने भी समकालीन सगुण भक्ति साधना की व्यापक प्रतिष्ठा की है । इस प्रकार मध्यकाल में हिन्दी काव्य की भक्ति धारा राम और कृष्ण नाम की दो शाखाओं में प्रवाहित होती हुई दृष्टिगोचर होती है जिनमें भगवान् विष्णु के दो प्रमुख अवतारों के चरित्रों को अभिव्यक्ति का आधार बनाया गया है ।

स्वामी रामानंद जी की हिन्दी रचनाओं के दो संस्करण क्रमशः डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल तथा डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित होकर निकल चुके हैं । उनकी हिन्दी रचनाओं में से कुछ को हम निर्गुण भक्ति से सम्बन्धित स्तोत्रों के निकट रख सकते हैं और कुछ को सगुण भक्ति के अन्तर्गत । उनकी निम्नलिखित आरती में भक्ति भावना का मधुर रूप प्राप्त होता है :

आरति कीजै हनुमान लला की । दुष्ट दलन रघुनाथ कला की ।
जाके बल भर ते महि काँपै । रोग सोग जाकी सिमानं चापै ।।
अंजनी सुत महाबल दायक । साधु संत पर सदा सहायक ।
बाएं भुजा सब असुर संहारी । दाहिन भुजा सब संत उबारी ।
लछिमन धरति में मूर्छि पर्‍यौ । पैठि पताल जम कातर तर्‍यौ ।
आनि सजीवन प्रान उबार्‍यौ । मही सबन कै भुजा उपार्‍यौ ।।

x x x x x x x x

लंक बिधंस कियौ रघुराई । रामानंद आरती गाई ।।
सुर नर मुनि सब करहिं आरती । जै जै जै हनुमान लाल की ।। १.

~~xxxx~~ आचार्य राम चंद्र शुक्ल .. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ११६ ..२०

तुलसी के पूर्व के राम-भक्त कवियों में अग्रदास, नाभादास, हृदयराम आदि की भी अनेक स्तोत्रात्मक रचनायें उपलब्ध हैं। तुलसी के आविर्भाव से राम-भक्ति परक ~~काव्य~~ काव्य-धारा, अत्यन्त उर्जित हो व्याप्त हो गयी। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है कि 'गोस्वामी तुलसीदास के लोक व्यापी प्रभाव ने जहां राम चरित को अत्यंत लोक प्रिय बना दिया वहीं राम चरित सम्बंधी अन्यान्य काव्यों को श्रीहीन और फीका बना दिया है। इसलिए परवर्तीकाल में राम चरित सम्बंधी कोई काव्य बहुत लोक प्रिय न हो सका।'[१.]

गोस्वामी तुलसीदास : राम की सगुण भक्ति का पूर्ण विकसित रूप हमें गोस्वामी जी के काव्य साहित्य में प्राप्त होता है। उन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी स्तोत्रों की सभी परम्पराओं का प्रयोग किया है। उनके स्तोत्रों में पौराणिक भक्ति का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि पुराणों में जो कुछ भी दार्शनिक विचार निबद्ध किए गये हैं उन सभी की अभिव्यक्ति तुलसी साहित्य में हुई।[२.] तुलसीदास जी ने अपने आराध्य राम के अतिरिक्त प्रायः अनेक देवी-देवताओं ~~से~~ एवं तीर्थ स्थानों की स्तुति की है परन्तु इससे राम की अनन्यता में कोई बाधा नहीं उपस्थित होती। उनकी चातक-विषयक उक्तियां इसकी उत्तम उदाहरण हैं। उनके ग्रंथों में ऐसे अनेक उदाहरण हमें सरलता से प्राप्त हो जाते हैं जिनसे यह प्रमाणित हो जाता है कि विभिन्न देवताओं की स्तुतियों का उद्देश्य भी उनके आराध्य भगवान् राम की भक्ति की उपलब्धि ही है। वे जिस किसी देवता की स्तुति करते हैं उससे राम की भक्ति ही वरदान के रूप में मांगते हैं :

१.

१. डा० हजारी प्रसाद दिवेदी हिन्दी ..साहित्य पृ० २४७

२. डा० उदयभानु सिंह .. तुलसी-..दर्शन .. मीमांसा पृ० ३३१.

गणेश-स्तुति :

माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं राम सिय मानस मोरे ।।[१]

सूर्य-स्तुति :

वेद पुरान प्रगट जस जागै । तुलसी राम भगति वर मागै।।[२]

शिव-स्तुति :

देहु काम रिपु राम-चरन रति , तुलसीदास कहँ कृपा निधान ।।[३]

देवी-स्तुति :

देहि मा मोहि पन प्रेम यहनेम निज , रामघन स्याम तुलसी पपीहा ।।[४]

गंगा-स्तुति :

देहि रघुवीर-पद-प्रीति निर्भर मातु ,
दास तुलसी त्रास हरनि भव भामिनी ।।[५]

हनुमान-स्तुति :

रामपद पद्म मकरंद मधुकर पाहि
दास तुलसी सरन , सूल पानी ।।[६]

शत्रुघ्न-स्तुति :

दास तुलसी चरन-सरन सीदत विभो पाहि दीनार्त-संताप-दाता ।।[७]

सीता-स्तुति:

तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ ।।[८]

---

१. विनय पत्रिका छंद १
२. विनय पत्रिका छंद २
३. वही छंद ३
४. वही छंद ४
५. वही छंद ५
६. वही छंद ६
७. वही छंद ७
८. वही छंद ८

इस प्रकार उन्होंने प्रत्येक देवता से भगवान् राम की भक्ति की याचना की है केवल 'हनुमानबाहुक' में उन्होंने हनुमान जी की स्तुति विशेष रूप में की गई है। वे उन्हें अपना गुरू, रक्षक एवं पथ-प्रदर्शक मानते हैं। परन्तु इसमें भी उन्होंने किसी प्रकार की याचना आदि नहीं की है। वे तो अपने शरीर के कष्टों का मूल कारण स्वयं के किए हुए पाप मानते हैं।

यह भी माना जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने समन्वयवादी दृष्टि कोण के कारण देवी-देवताओं की स्तुतियाँ की हैं। डा० उदयभानु सिंह के शब्दों में "तुलसी की विचार धारा समन्वयवादी है। इसलिए उन्होंने वैष्णव, शैव, शाक्त आदि सम्प्रदायों के आराध्य देवों में समन्वय स्थापित करते हुए उन्हें एक ही परमात्मा का स्वरूप माना है। विष्णु, शिव आदि को उसी की शक्ति विशेष के रूप में स्वीकार किया गया है।"[१]

डा० उदयभानु सिंह के इस कथन की पुष्टि उनके द्वारा प्रस्तुत राम कथा द्वारा हो जाती है। शिव को राम का महान भक्त घोषित करना, यहाँ तक कि राम के परमात्म तत्व के प्रति आशंका पर पार्वती के त्याग का निश्चय, राम का सेतु-निर्माण के उपरान्त रामेश्वर-पूजन, उनके द्वारा शिव द्रोही से संतुष्ट न होने की घोषणा, सीता को आदि शक्ति का स्वरूप, मान सके आरम्भ के उल्लेख आदि सम कालीन शाक्त और शैव साधनाओं में समन्वय स्थापित करने के प्रयत्न के ज्वलंत उदाहरण हैं। यदि एक ओर उनमें सब देवताओं के प्रति पूज्य बुद्धि को राम भक्ति के साथ समन्वित करने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर उनमें अ अनन्यता का परमोच्च आदर्श भी पूर्ण रूप से व्यवहृत मिलता है। उन्होंने कहा है :

---

१. डा० उदयभानु सिंह .. तुलसी-दर्शन-मीमांसा पृ० ३६५

जो जगदीश तो अति भलो , जो महीशलो भाग ।
तुलसी चाहत जनम भरि , राम चरन अनुराग ।। [1]

उनकी इस अनन्य भक्ति का आदर्श वह चातक है जो निष्काम लोक कल्याणकारी मेघ का अनुरागी तो है , किंतु उससे भी कभी एक बूंद जल प्राप्त करने की आशा या अभिलाषा नहीं रखता । गोस्वामी जी के स्तोत्र-साहित्य मे उनकी अनन्यता और निष्कामता का यह आदर्श सवर्त्र अभिव्यक्त हुआ है । उनके स्तोत्र विषयक विवेचन को सुविधा के लिए समस्त तुलसी-साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :

१. रामचरित मानस के स्तोत्र
२. विनय पत्रिका के स्तोत्र
३. अन्य रचनाएं

रामचरित मानस का स्तोत्र-साहित्य

यदि गोस्वामी तुलसीदास जी ने केवल राम चरित मानस ही लिखा होता तो भी उन्हें अमर बना देने के लिए यह महान ग्रंथ पर्याप्त था । यथपि रामचरित मानस 'प्रबंध काव्य ' है जिसमें कवि का प्रधान उद्देश्य 'विनय-पत्रिका ' की भांति स्तोत्र-साहित्य प्रस्तुत करना न था तथापि 'मानस' के आरम्भ में ही ' करनहुं रघुपति गुन गाहा ' की कामना करने वाले गोस्वामी तुलसीदास जी ने कथा भाग में जहां कहीं भी अवसर मिल सकता था , अपने मधुर स्तोत्रों द्वारा इस ग्रंथ को सुसज्जित किया है । ग्रंथारम्भ में तो उन्होंने अपने आराध्य देव राम-सीता के अतिरिक्त अनेक देवी-देवताओं की ही नहीं , अपितु समस्त जगत को 'सीताराम मय '

---

१. दोहावली

के रूप में ही दृष्टिगत करके प्रणाम किया है। विषय वस्तु के दृष्टिकोण से मानस में आई हुई एतद् विषयक रचनाओं के निम्नलिखित प्रकार है :

१. आराध्य विषयक स्तोत्र-साहित्य। राम तथा सीता सम्बंधी, राम नाम की वंदन

२. राम के पारिवारिक जनों से सम्बन्धित स्तोत्र

३. गुरू सम्बन्धी स्तोत्र

४. देवी-देवताओं से सम्बन्धित स्तोत्र

५. धार्मिक स्थानों और नदियों के स्तोत्र

६. अन्य विषयक स्तोत्र। कर्म, खल, संत आदि सम्बधी।

रूप-विधान की दृष्टि से प्रथम अध्याय में जिन छः भेदों का निरूपण किया गया है वे सभी मानस में प्राप्त होते हैं जैसा कि आगे के विवेचन से प्रकट है।

मंगलाचरण : गोस्वामी जी के मंगलाचरणों की प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें साहित्य शास्त्रीय एवं पौराणिक दोनों प्रकार के मंगलाचरण की विशेषतायें समन्वित रूप में मिलती है। मंगलाचरण की कोटि में आने वाले मानस के स्तोत्र वस्तु निर्देशात्मक भी हैं और नमस्कारात्मक भी। उनमें गणेश, सरस्वती, शिव, पार्वती आदि देवी देवताओं की वंदना के साथ-साथ अपने काव्य के नायक श्री राम और सीता के तात्त्विक स्वरूप का निर्देश भी प्राप्त होता है।[१] मंगलाचरण में सीताराम विषयक इन श्लोकों को श्रीमद् भागवत के मंगलाचरण के समकक्ष रखा जा सकता है।[२] मानस के मंगलाचरण की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे गीर्वाणी-वाणी और भाषा दोनों के माध्यम से प्रस्तुत किए गए हैं। परम औचित्यवादी गोस्वामी जी ने संस्कृत के वर्णी मंगलाचरणों को वर्ण-वृत्तों के माध्यम से प्रस्तुत किया है और भाषा के मंगलाचरण को मात्रिक छंदों द्वारा। तीसरी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि प्रत्येक कांड के आरम्भ में आने वाले

---

१. सीताराम गुण ग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ
वंदे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ॥४॥
उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणीं।
सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभां॥५॥ बा० का० श्लोक ४,५

मंगलाचरणात्मक श्लोक में तत्सम्बंधी कथा के मूल तत्व को सूत्र रूप में संकेतित किया है। उदाहरण स्वरूप अयोध्याकान्ड की सम्पूर्ण कथा का मूल तत्व निम्नलिखित श्लोक से लक्ष्य किया जा सकता है :

प्रसन्नतां या न गताभिषेक स्तथा न मम्ले वनवास दु:खत: ।
मुखाम्बुज श्री रघुनंदनस्य मे सदास्तु सा मंजुल मंगल प्रदा ।।

अयोध्याकांड श्लोक २

इसी प्रकार आरण्य कान्ड का निम्नलिखित मंगलाचरण का श्लोक कथावस्तु का निर्देश करता हुआ वनवासी राम सीता को हमारे सम्मुख उपस्थित कर देता है :

सांद्रानंद पयोद सौभगतनुं पीतांबरं सुंदर ।
पाणौ बाण शरासनं कटिल सत्तूणीर भार वरं ।।
राजीवायत लोचनं धृत जटा जूटेन संशोभितं ।
सीता लक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ।।२।

अ० का० श्लोक २

वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण का उत्तम उदाहरण किष्किन्धाकान्ड के श्लोक की निम्नलिखित पंक्तियां हैं :

माया मानुष रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्म वर्मौ हितौ ।
सीतान्वेषणतत्परौ पथि गतौ भक्ति प्रदौ तौ हित: ।।

कि० का० श्लोक १

सुन्दर कान्ड के सम्बंध में यह उल्लेखनीय है कि उनके प्रथम दो श्लोक क्रमश: नमस्कारात्मक तथा वस्तु निर्देशात्मक तो हैं ही,[1] किन्तु उसके साथ ही साथ उक्त कान्ड के नायक हनुमान जी की भी नमस्कारात्मक वन्दना मंगलाचरण के रूप में हैं।[2] लंका कान्ड में मंगलाचरण में प्रथम श्लोक राम के प्रति तथा द्वितीय और तृतीय श्लोक शंकर के प्रति नमस्कारात्मक है।[3] इनके उपरान्त आने वाला दोहा वस्तु निर्देशात्मक तथा नमस्कारात्मक दोनों हैं जिसमें रावण वध के लिए तत्पर होने वाले भगवान् राम के महाकाल पुरूष स्वरूप की वंदना की गई है।[4] उत्तरकांड के प्रथम दो श्लोक वस्तु निर्देशात्मक तथा नमस्कारात्मक दोनों हैं[5]

---

१. नान्यास्पृहा रघुपते हृदये स्मदीये सत्यं वदामिच भवाना खिलंतरात्मा ।
भक्ति प्रपच्छ रघु पुंगव निर्भरां मैं कामादि दोष रहितं कुरू मानसंच ।।
सु० का० श्लोक २

२. अतुलित बल धामं स्वर्ण शैलाभ देहं दनुज वन कृशानुं ज्ञानिना मग्रगण्यं ।
सकल गुणनिधानं वान राणामधीशं रघुपति वरदूत वात जातं नमामि
श्लोक ३.

३. लंका कान्ड श्लोक १. २. ३.

४. लव निमेष परमानु जुग बरष कल्प सरचंड ।
भजसि न मन तेहि राम कहुं काल जासु को दंड ।।
लं० का० दो० १

५. केकीकंठाभ नीलं सुरवर विलस द्विप्र पादाब्ज चिन्हं
शोभाढ्यं पीत वस्त्रं सर सिज नयनं सर्वदा सुप्रसन्नं ।
पाणौ नाराच चापं कपि निकर युतं बंधुना सेव्यमानं
नौ मीड्यं जान कीशं रघुवर मनिशं पुष्प का रूठ रामं ।।१।।
कौसलेन्द्र पदकं जमंजुलौ कोमला वज महेश वंदितौ ।
जानकी कर सरोज लालितौ चिंत कस्य मनु भृंग संगिनौ ।।२।।

किंतु तृतीय श्लोक केवल नमस्कारात्मक है , जिसमें भगवान् शिव की वंदना की गई है । [1]

उपर्युक्त विवेचन में निर्दिष्ट होने वाले मंगलाचरण के विविध रूपों के अतिरिक्त "मानस" के आरंभ में आने वाले मंगलाचरणात्मक प्रथम श्लोक में इस बात का भी स्पष्ट निर्देश मिलता है कि ग्रंथारम्भ से ही गोस्वामी जी की सम्यक दृष्टि वर्ण , अर्थ , रस , छंद तथा हितत्व इन काव्य के पंचांगों पर सतत जागरूक थी । तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डा० बल्देव प्रसाद मिश्र के शब्दों में "दिव्य विचार ~~तदनुरूप~~ तदनुकूल दिव्य उच्चार से संयुक्त हो तो काव्य के क्षेत्र में उनकी शक्ति पांच रूपों में प्रकट होती है । यही काव्य का पञ्चांग है । पहिला अंग है वर्ण , दूसरा है अर्थ संघ , तीसरा है रस , चौथा है छंद अथवा संगीतात्मकता और पाँचवां है "मंगल" अथवा साहित्य का हितत्व । [2]

बालकान्ड के प्रथम श्लोक पर अन्य प्रकार से विचार करते हुए आपने इस तथ्य को सम्यक रूपेण प्रमाणित किया है कि भारतीय साहित्यशास्त्र के प्रचलित समस्तवादों के समन्वय की ओर भी गोस्वामी जी उतने अभिमुख न थे । वे लिखते हैं "साहित्यशास्त्र के सम्बंध में भारत में जितने वाद उद्भूत हुए हैं, वे हैं ।क। अलंकार वाद । वक्रोक्ति वाद भी जिसकी श्रेणी में है । ।ख। ध्वनिवाद ।ग। रसवाद ।घ। रीतिवाद । गुणवाद भी जिसकी श्रेणी में कहा जा सकता है ।

---

१. कुंदु इंदु दर गौर सुंदर अंबिका पतिम भीष्ट सिद्धिदं ।
कारूणीक कलंक जलो चनं नौमि शंकर मनंग मोचनम् ।।३० ।।
उ० का० श्लोक ३

२. डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ,, मानस माधुरी पृ० २०६

और ।च। औचित्यवाद । वर्णी नाम से गोस्वामी जी ने उक्ति वैचित्र्य वाले अलंकारवाद का , अर्थ संघाना से ध्वनिवादका, रसानां से रसवाद का छंद सामपि से रीतिवाद का और मंगलानां से औचित्यवाद का संकेत किया है । अपने अपने ढंग पर पांचों की आवश्यकता है परन्तु सबका मूल आधार है वर्ण और अर्थ । 'कविहि अरथ आखर बल सांचा ।' इन दोनों के क्रमशः प्रधान देव हैं वाणी और विनायक । अतः मंगलाचरण में वे ही प्रथम वंदनीय हुए हैं । उन्हीं से रस , छंद और मंगल की भी सृष्टि होती है ।'[1]

कालिदास ने शब्द और अर्थ की प्रति पत्ति के लिए दोनों के साथ-साथ सम्पृक्त रूप को भी अपनाया है और पार्वती-परमेश्वर की वंदना की है । परंतु डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने इस बात का खंडन करते हुए लिखा है कि 'शब्द और अर्थ के दैवीय अधिकारी तो वाणी और विनायक है । वैधानिक नियम के अनुसार तो उन्हीं के पास पहिले पहुंचना चाहिए था । फिर , काव्य के लिए केवल वाक् और अर्थ क्यों १. रस , छंद और मंगल की भी तो आवश्यकता है । एक और भी है । वाक् और अर्थ की प्रति पत्ति के लिए प्रार्थना करने में यह स्पष्ट नहीं होता कि वाक् और अर्थ के प्रदाता के रूप में इष्ट देव की प्रार्थना की जा रही है या प्रकर्ता के रूप में ।[2]

गोस्वामी जी के मंगलाचरण में एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने रामचरित मानस के आदि में गणेश जी की वन्दना की है । उन्होंने अपने बारह ग्रंथों मे से छः में गणेश वन्दना की है और छः में नहीं । इस प्रकार उन्होंने अपनी पूर्ववर्ती परम्परा को अनुसरण किया है जिन्होंने कहीं पर गणेश की वंदना की है तो कहीं पर अन्य देवताओं की । गणेश की वन्दना

---

१. वही पृष्ठ २१३

२. वही पृ० २१५ , २१६

करने का मूल कारण उनका सिद्धि दाता होना है । उनका स्मरण सब प्रकार के विघ्नों को दूर कर देता है । भगवान् के चार अवतार शास्त्रों में माने गए हैं , आवेश , अंश , कला और पूर्ण । पुण्य शक्ति का संचार करने वाला आवेशावतार कहलाता है । गणेश जी को इसी का अवतार माना जाता है । अत: गणेश जी में भी वे भगवान् राम का ही तत्व समझकर वन्दना करते हैं ।

साथ ही साथ गणेश की वन्दना करके गोस्वामी जी ने पंचदेवों पासना की परम्परा को भी जीवित रक्खा है ।

गोस्वामी जी के संस्कृत के रूप में मंगलाचरणों को अनुष्टुप , माणव का क्रीड , नगस्वरूपणी , विद्युन्माला , शार्दूलविक्रीडित एवं वसंत तिलका छंदों में लिखा है । संस्कृत के मंगलाचरण के इनसात श्लोकों के महत्व का निरूपण करते हुए कुछ विद्वानों ने यह लिखा है कि इन श्लोकों में सूक्ष्मरीति से इस ग्रंथ का विषय और योजना आदि का निर्देश किया गया है । साथ ही साथ इसमें ७ संख्या से यह सूचित किया गया है कि इसमें सात सोपान अथवा कान्ड हैं । इसलिए प्रत्येक सोपान के लिए क्रम से एक एक मंगलाचरण का श्लोक ग्रन्थारम्भ में दिया गया है । रामायण के प्रसिद्ध और पुराने टीकाकार श्री बैजनाथ दास ने इस प्रसंग में लिखा है " इसके प्रथम पाँच श्लोकों में नाम , लीला , धाम , रूप का प्रचार पाया जाता है । अत: उनके अधिकारियों की वन्दना की । प्रथम श्लोक को विचार देखिए तो रेफ (´) और (अनुस्वार)(ं) ही दिखाई देगा । श्री राम नाम के ये दोनों वर्णवाणी के विशेष स्वामी हैं , ऐसा अर्थ 'वाणी विनायकौ ' का करने से प्रथम श्लोक में श्री रामनाम की वन्दना हुई । श्री रामनाम के परम तत्वज्ञ एवम् अधिकारी भवानी शंकर की वन्दना द्वितीय श्लोक २ में है । गुरू शंकर रूप अर्थात् विश्वास रूप हैं । श्री रामनाम में विश्वास कराते हैं । इस तरह ये तीन

श्लोक नाम सम्बंधी हुए । श्लोक ६ में `ग्राम` और `श्ररण्य` से धाम और `गुण` से लीला सूचित की । अस्तु इनके अधिकारी श्री हनुमान जी और वाल्मीकि जी की वन्दना की । रूप की अधिकारिणी श्री सीता हैं । इनके द्वारा श्री राम रूप की प्राप्ति होती है । अत: उनके बाद श्री राम जी के ऐश्वर्य एवं माधुर्य रूप की वन्दना की । सातवे श्लोक में काव्य का प्रयोजन कहा । "[1]

गोस्वामी जी ने अपने मंगलाचरणों में `मगण` का ही प्रयोग किया है जो शुभ गण माना जाता है । इसका देवता भूमि है जिससे दिव्य गुण की उत्पत्ति होती है और मंगल भावना का विकास होता है । कुछ विद्वानों का कथन है कि `मगण` का ही प्रयोग क्यों किया जाय जबकि नगण, मगण, और यगण को भी शुभ माना जाता है । इसके विषय में यही कहा जा सकता है कि " मगण का देवता पृथ्वी है और पृथ्वी की सुता श्री जानकी जी हैं । स्त्री जाति को मातृ सम्बंध विशेष प्रिय होता है । श्री किशोरी जी इस सम्बंध से अधिक प्रसन्न होकर कृपा प्रदान करेंगी तब मेरा मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा ।।"[2]

अपने भाषा के मंगलाचरणों में गोस्वामी जी ने `सोरठा` छंद का प्रयोग किया है । इसके प्रथम और तृतीय चरण में ११.११ और द्वितीय में तथा चतुर्थ चरण में १३.१३ मात्रायें होती है । `सोरठे` में वृद्धि का क्रम पाकर और अपनी अभिलाषा की पूर्ति विचार कर उन्होंने इसे मंगलाचरण में प्रयुक्त किया है । महात्मा राम शरणदास ने लिखा है कि सोरठा छंद में मेघराग के अन्तर्गत है जो वर्षा ऋतु के श्रावण और भादों में गाया जाता है[3]

---

१. दे० अन्जनी नंदन । मानस पीयूष पृ० ~~५६~~ ५.

२. वही

३. वही

तुलसीदास ने लिखा है " बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास ।
राम नाम वर बरन जुग सावन भादों मास । "
इस प्रकार मंगलमयी राम भक्ति का परिचायक सोरठा मंगलाचरण के लिए अत्यंत ही उपयुक्त छंद माना गया । इसी प्रकार कुछ विद्वानों ने मंगलाचरण के सात सोरठों को भी सातों काण्डों की सूक्ष्म सूचना देने वाला माना है । मानस के मंगलाचरण के पांच सोरठों द्वारा गोस्वामी जी ने पंच देवों की वन्दना की है । ऐसा भी कुछ विद्वानों का मत है ।[1] ऐसा मानने वालों का यह कहना है कि दूसरे सोरठे में यद्यपि किसी देवता का नाम नहीं दिया गया है परन्तु उसमें जिन गुण क्रियाओं का वर्णन है वे भगवान् विष्णु और सूर्य दोनों पर व्यवहृत होती हैं । तीसरे सोरठे में भगवान् विष्णु की पृथक् वंदना की गई है । इसलिए दूसरे में सूर्य की वन्दना मान लेने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हो सकती । जिस प्रकार मंगलाचरण के ये सोरठे गोस्वामी जी की तत्व दृष्टि और मानस के कथा-तत्त्व के निर्देशक माने जा सकते हैं उसी प्रकार इनको मानस की काव्य-कला की सूक्ष्मता का भी अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है ।

इस सम्बंध में प्रसिद्ध समीक्षक डा० रामविलास शर्मा का मत उल्लेखनीय है रामचरित मानस की कला सूक्ष्मता उसके समग्र स्वर विस्तार पर निर्भर है । छोटे बड़े स्वर पारस्परिक आकर्षण में बंधे बीच बीच में कोमल व्यंजनों को डाल कर कविता का मनोहर जाल बुनते चलते हैं । भाव के अनुकूल ऊँचा नीचा करते वे उसे नीरसता की भूमि पर गिरने से बचाये रहते हैं । प्रत्येक चौपाई समूह के बाद जब दोहा आता है तो स्वर-विस्तार का एक दीर्घ आवृत्त समाप्त होता है । पाठक को यहाँ कुछ क्षण विराम करने का अवसर मिलता

1- मानस-पीयूष पृ० २८

है , उसके पश्चात् वह दूसरी तरंग पर बहने के लिए तैयार होजाता है । बीच में जो छंद आते हैं , वे चौपाइयों की गति को बदल दीर्घ विराम देते हैं । जिन सूक्ष्म स्वर तन्तुओं से यह सारा जाल बुना गया है उनपर हाथ रखते उनके बीच की छोटी छोटी गांठों को खोज निकालना अत्यंत दुष्कर है , फिर भी कहीं कहीं हमें उनका आभास मिल जाता है और हम कह उठते हैं , यहां के माधुर्य का कारण स्वरों का इस भांति सजाना है । बालकांड के इन आरम्भ के सोरठों को लीजिए :

जेहि सुमिरत सिधि होइ , गन नायक करिवर वदन ।
करौ अनुग्रह सोई बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ।।१।।
मूक होइ बाचाल , पंगु चढ़ै गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल , द्रवौ सकल कलिमल दहन ।।२।।
नील सरोरुह स्याम , तरुन अरुन वारिज नयन ।
करौ सो मम उर धाम , सदा छीर सागर सयन ।।३।।
कुंद इन्दु समदेह , उमारमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह करौ कृपा मर्दन मयन ।।४।।
बंदौं गुरु पद कंज , कृपा सिंधु नर रूप हरि ।
महा मोह तम पुंज , जासु बचन रवि कर निकर ।।५।।

स्वरों की अद्भुत मैत्री यहां स्पष्ट है । पहले सोरठे में 'होइ' और 'सोइ' का दीर्घ और दूसरे सोरठे के 'होई' में अनुवृत्त होता है । दोनों को वह एक स्वर के बंधन से बांध लेता है । तीसरे के 'नील सरोरुह' में पुन: वह उठता है , अन्त के सोरठे के 'महामोह' में भी हम उससे सुनते हैं । सबसे अधिक आवृत्ति यहां 'आ' स्वर की होती है । पहले के 'गन नायक' और 'बुद्धिरासि' में दूसरे के 'बाचाल' 'जासु' 'कृपा' और 'दयाल' में , तीसरे के 'स्याम' 'बारिज' 'धाम' 'सदा' और 'छीर सागर' में , चौथे के 'उमारमन' 'करुनाअयन' 'जाहि' और

`कृपा ` में तथा पांचवें का `कृपा सिंधु ` महामोह ` और `जासु ` में ।
प्रत्येक दोहे में `आ` का यह अनुवर्तन बड़ा प्रधान तार है , जिससे सब सोरठे आपस में गुंथे हुए और एक खिंचाव से ऊपर उठे हुए हैं । अब `और ` को देखिए । पहले के `करौ ` में , दूसरे के द्रवौ ` में तीसरे के ` करौ ` में और वैसे ही चौथे के करौ `में तथा पांचवें के "वदौं ` में उसकी अनुवृत्ति होती है । दूसरे, तीसरे सोरठों की मध्य यति `आल और आम` पर होती है । `आ ` को और न दोहरा चौथे सोरठे की मध्य यति `एह ` पर होती है । `ए ` स्वर वैचित्र्य के लिए कामदेता है । इसी भांति दूसरे सोरठे के `मूक ` का ऊं और पांचवे के `बर रूप ` का `ऊ ` । तीसरे सोरठे का पहला चरण `नील सरोरूह ` के `ई ` से उठता है , उसी के अंतिम चरण के `क्षीर सागर ` में उसकी मधुर अनुवृत्ति होती है । जैसे दो पंखों पर , सोरठा इन दो स्वरों पर सध जाता है । इन सोरठों की पारस्परिक मैत्री स्वरों मात्र पर निर्भर नहीं , छोटे छोटे अनुप्रास सर्वत्र बिखरे हैं और साथ ही दों के बड़े आवर्त भी आते हैं । पहले के दूसरे चरण में `करिबर बदन ` है , दूसरे के उसी चरण में गिरिबर गहन है । तीसरे में तरुन अरुन की मधुर लपेट है । उसी के तीसरे चरण का `मम `, चौथे सोरठे के पहले चरण के `सम ` से मेल खाता है । पांचवे सोरठे में दूसरे चरण के `बर रूप ` के `अर ` की अनुवृत्ति उसी के अंतिम चरण के `कर निकर ` में होती है । इसके अतिरिक्त चार सोरठों के दूसरे चौथे चरणों के अंत में `अन ` आता है और जैसे चौथे सोरठे में , कभी वह बीच में भी आ जाता है । सोरठों के पश्चात् जब `वंदौ गुरू पद पदुम परागा । सुरूचि सुबास सरस अनुरागा ।` आदि चौपाइयां शुरू होती हैं तो आरंभ में ही पांचवें सोरठे के पहले चरण का `वंदौ गुरू पद ` यहां दोहराया जाते हैं । नीचे की चौपाइयां इस भांति उस सोरठे ` से विलग नहीं होने पाती । साथ ही गुरू पदों पर विशेष जोर पड़ता है । कंज के स्थान में यहां `पदुम परागा ` का प्रयोग अर्थ का जो मधुर विकास करता है उस पर जो लिखा जाय थोड़ा ।।`[१.]

१. डॉ० रामविलास शर्मा .. रामचरित मानस में कुछ आधुनिक काव्य-कला की विशेषताएं ` शीर्षक निबंध माधुरी पृ० ७७६..७७७ जनवरी १९३७

२. वन्दना – प्रथम अध्याय में वंदना का वात्त्वर्थ स्पष्ट करते हुए यह बताया गया है कि इसका स्वर अभिनन्दनात्मक होता है। मंगलाचरण के पश्चात् मानस की जो विस्तृत प्रस्तावना प्रस्तुत की गई है वह अधिकांश वन्दनात्मक है। इसमें निम्नलिखित वन्दनायें उपलब्ध होती हैं :

गुरू, शिव, ब्राह्मण, संत समाज, ब्रह्मा, वेद, तीर्थ, खलगन, देव-दनुज, नर, नाग, प्रेत, पितृ, गन्धर्व, किन्नर कवि। व्यासादि कवि जिन्होंने भगवान् का व्यापक रूप स्पष्ट किया है तथा कलियुग के कवि जिन्होंने भगवान् के व्यक्तित्व का स्पष्टीकरण किया है। शारदा, गंगा, पार्वती, अयोध्या, कौशल्या, दशरथ, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान, अंगद, विभीषण, विदेह, मुनिगण, शुक सनकादि, नारद आदि। सीता, रामनाम आदि।

इन वन्दनाओं के आलम्बन निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं :

१. गुरू एवं ऋषि गण।
२. भगवद् यश वर्णन करने वाले वाल्मीकि आदि कवि एवं भाषा में भगवद् यश वर्णन करने वाले कवि।
३. भगवान् राम, उनका नाम, परिवार और परिकर जन।
४. वैदिक त्रिदेव एवं अन्य देवी देवता, भगवान् राम के धाम एवं अन्य तीर्थ।
५. सज्जन एवं असज्जन
६. वेद पुराण, शास्त्र एवं अन्य ग्रन्थ। काव्य।
७. अन्य। चराचर जगत।

मानसान्तर्गत वन्दनाओं के इन विषयों पर विचार करने से उसके वास्तविक स्वरूप को सुगमता से हृदयंगम किया जा सकता है और गोस्वामी जी की इस कथन की सत्यता का बोध भी किया जा सकता है :

अस मानस मानस चख चाही । भइ कवि बुद्धि विमल जस च चाही ।।

गोस्वामी जी की इन वन्दनाओं से स्पष्ट हो जाता है कि मानस वैयक्तिक पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, लौकिक एवं अलौकिक सभी प्रकार की भाव भूमियों का विराट समन्वय प्रस्तुत करने के लिए ही रचा गया है। मानव जीवन के सभी पक्ष महाकवि की दृष्टि में है और वह अपने प्रबुद्ध निवेदन द्वारा उन सबमें संतुलन स्थापित करने के लिए कृत संकल्प होकर इस महाकाव्य की रचना में प्रवृत्त हुआ है। कुल मिलाकर यह सब वन्दनाएँ नमस्कारात्मक रूप में होने पर भी वस्तु निर्देशात्मक कही जा सकती हैं। गुरु तथा ऋषियों की वन्दनायें[1] वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में ऋषियों की महत्ता का निर्देश करती हैं।

कवियों की वन्दनाएँ एक ओर यदि ऋषियों की महत्ता का निर्देश करती हैं तो दूसरी ओर वे भगवद् भक्ति मय सात्त्विक काव्य-परम्परा का सम्बर्द्धन करने वाले कवियों की परम्परा का अभिवंदन भी करती हैं।[2]

भगवान् राम सम्बंधी वन्दनाएँ[3] उनके शक्ति, शील और सौंदर्य की

---

१. क. गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिय दृग दोष विभंजन । बाल का०
ख. व्यास आदि कवि पुंगव नाना । जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ।
२. क. चरन कमल बन्दौं तिन्ह केरे । पुरवहु सकल मनोरथ मेरे ।।
ख. बन्दहुँ मुनि पद कंजु, रामायन जेहि निरमयेउ ।
ग. कलि के कविन्ह करौं परनामा । जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा ।
जे प्राकृत कवि परम सयाने । भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने । बा० का०
३. सखर सुकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित ।।

अभिव्यञ्जना के साथ साथ उनके विश्वातीत और विश्वमय तात्विक स्वरूप का निर्देश करती हैं। भगवान राम के ब्रह्म मय स्वरूप से वह अधिक उन्होंने उनके नाम को महत्व दिया है[4]। उनके अनुसार वह रामभक्ति का प्रधान आधार[5]। कहना न होगा यह उनके अनुसार भक्ति का सर्वसुलभ साधन है[6]। नाम के सम्बन्ध में विस्तृत विचार परवर्ती विवेचन में प्रसंगानुसार किया जायगा। राम के पारिवारिक जनों की वन्दनायें[7] पारिवारिक सम्बन्धों के आदर्श और परिकर वर्ग की वन्दनायें[8] मित्र, स्वामी, सेवक, सेनानायक, सैनिक, गुरू, शिष्य आदि अनेक प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों के आदर्श को प्रस्तुत करती हैं।

विभिन्न देवी :- देवताओं की वन्दनाओं द्वारा गोस्वामी जी तत्कालीन हिन्दू समाज में प्रचलित आराधना भेद की तात्विक एकता का प्रतिपादन करके एक प्रकार से सच्चे लोकनायक की भांति सामाजिक वैषम्य के निराकरण का महत्वपूर्ण प्रयास भी करते हैं। उस समय समाज में नाथ सिद्ध साधु अपने धर्म के प्रचार मे रत थे और पौराणिक प्रभाव के कारण हिन्दुओं में अनेक देवी देवताओं की पूजा-अर्चना प्रारम्भ हो गई थी परन्तु गोस्वामी जी ने सबका समन्वयकर सभी को

---

४. ब्रह्म नाम नामु जड़ बरदायक बरदानि
रामचरित सतकोटि महँ लिये, महेशजिय जानि ।।२५ ।।

५. बरषा रितु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास ।
राम नाम बर बरन जुग, सावन भादव मास ।। दोहा १६ । बा० का०

६. सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू .. बालकांड २० वाँ दोहा चौ० २

कौशल्या — ७. बंदौ कौशल्या दिसि प्राची । कीरति जासु सकल जग माची ।
प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू । विस्व सुखद खल कमल तुषारू ।।
दशरथ .. — बंदहु अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि राम पद ।
बिछुरत दीन दयाल, प्रियतनु तृन इव परि हरेउ ।।
भरत .. — .. प्रनवौं प्रथम भरत के चरना । जासु नेम व्रत जाइ न बरना ।
लक्ष्मण .. — .. बंदौ लछिमन पद जल जाता । सीतल सुभग भगत सुखदाता ।
सीता .. — .. जनक सुता जग जननि जानकी । अति सम प्रिय करूना निधान की ।
८ हनुमान .. — ८. प्रनवौं पवन कुमार, खल बन पावक ज्ञान धन ।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप कर ।।१७।। बा० का०

९. मति अनुसारि सुधारि गुन, गन गन भव अन्हवार ।
सुमिरि भवानी संकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ।।

'सीय राम मय देखा है '। इस प्रकार की वन्दनाओं में एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि यदि एक ओर वे स्मृति के रूप में पंचदेवोपासना को भी स्वीकार करते हैं तो दूसरी ओर वे 'वन्दहुँ विधि पद रेनु ' कह कर वैदिक त्रिदेवों में अधिक समय से विस्मृत ब्रह्मा के [1] महत्त्व को पुन: प्रतिष्ठित करने का आयोजन करते हुए दिखाई पड़ते हैं। भगवान राम के धामों [2] की वन्दना एक वैष्णव के नाते उनके लिए स्वाभाविक ही थी क्योंकि भगवान् के नाम, रूप लीला, माया, वैष्णव आराधना के चार प्रमुख अधिष्ठान हैं। डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने 'चौदह धामों को मनुष्य के अन्त: करण में मानकर उनमें ही प्रभु का वास बताया है। [3] प्रयाग आदि तीर्थों, जिनके प्रति उस समय जनता की श्रद्धा कम करने वाले अनेक पंथ उठ खड़े हुए थे, की वन्दना द्वारा वे उनके प्रति अन्ध श्रद्धा उत्पन्न नहीं करना चाहते थे अपितु उनके वास्तविक सामाजिक महत्त्व को सामने लाते हैं जो इस पंक्ति द्वारा स्पष्ट होता है :

---

१. वंदौ विधि पद रेनु, भवसागर जेहि कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल विष वारूनी ।। १४ ।। बा० का०

२.क. वंदौ अवधपुरी अति पावनि । सरजू सरि कलि कलुष नसावनि ।। ।अयोध्या।
ख. अकथ अलौकिक तीरथ राऊ । देइ सद्य फल कौटि प्रभाऊ ।। ~~प्रयाग~~ प्रयाग
ग. चित्रकूट जनु अचल अहेरी । चुकइ न घात मार मुठ भेरी ।। चित्रकूट

३. वे चौदह धाम ऐसे भक्तों के हृदय हैं जिनमें श्रवण शक्ति हो, दर्शना सक्ति हो, कीर्तना सक्ति हो अर्चना सक्ति हो, पूजना सक्ति हो, निर्विकार वृत्ति हो, सन्त वृत्ति हो, श्रद्धा वृत्ति हो, धर्म वृत्ति हो, ~~धर्म वृत्ति हो~~, विश्वास वृत्ति हो, ध्यान वृत्ति हो, दास्य वृत्ति हो अथवा सहज स्नेह वृत्ति हो ।। ' डा० बल्देव प्रसाद मिश्र .. मानस माधुरी पृ० १०५

सज्जन असज्जन [1] की वंदनाओं में मानव-चरित्र की विविधि भूमिकाओं का निर्देश करते हुए लोक-व्यवहार की अनेक उपयोगी बातें बतलाई गई है जिनमें गोस्वामी जी का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक ज्ञान एवं अनुभव का प्रमाण प्राप्त होता है।

वैदिक एवं पौराणिक ग्रंथों की वन्दना में उनके विशाल स्वाध्याय को सूचित करती हैं।[2] उनकी वन्दनाएँ ~~उनके विशाल~~ करते हुए उन्होंने भारतीय श्रुति, स्मृति, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार आदि की तेजस्वी परम्पराओं का अभिनंदन करते हुए उनकी पुर्न प्रतिष्ठा के अपने विराट उद्योग का आभास दिया है।[3]

चराचर जगत की वन्दना[4] द्वारा उन्होंने सम्पूर्ण जगत को राममय बताकर अद्वैतवादी दर्शन का आभास दिया है।

इन वन्दनाओं की भावभूमि जितनी उदात्त है उतनी ही उदात्त और मनोहारिणी उनकी भाषा शैली भी है जो गोस्वामी जी की काव्य-रचना के सूक्ष्म कौशल का परिचय देती है। उनकी वाणी बाहर से देखने में जितनी सरल, सरस एवं प्रसादगुण सम्पन्न दृष्टिगत होती है उतनी ही सूक्ष्म लक्षणा और व्यन्जना भी उसमें वर्तमान है। उदाहरण के लिए दोहा दृष्टव्य है :

वन्दों गुरू पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

गुरू की उपर्युक्त वन्दनायें गुरू नरहर्यानंद की वन्दना तो है ही किन्तु साथ ही नर शरीर के हरण करने वाले अर्थात् ~~जन्म~~ आवागमन के बन्धन को छुड़ाने वाले गुरू के तात्विक रूप की भी वन्दना ~~भी की~~ है। 'नर रूप हरि' से प्रकट होने वाले उपर्युक्त तात्पर्यों के अतिरिक्त उससे नर रूप में प्रकट

---

१. (क) सुधा सुधाकर सुर सरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि व्याधू।।
(ख) सुधा सुरासम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।।

२. बंदौं चारि उ वेद, भव वारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहिं न सपनेहु खेद, वरनत रघुवर निखद जस।।

होने वाले भगवान् विष्णु के रामावतार के संकेत को भी लक्ष्य किया जा सकता है। भारतीय साधना में ब्रह्म को ही गुरू माना गया है[1] दूसरे तुलसीदास ऐसे साधकों ने अवतारों का 'उद्देश्य केवल दुष्टों का विनाश और सज्जनों का परित्राण ही नहीं माना है वल्कि उनका लौकिक चरित्र भक्ति सुप्रतिष्ठा के लिए भी बोध प्रद माना है।[2] इस प्रकार की बन्दनाओं में गोस्वामी जी ने अपनी पूर्ववर्ती संस्कृत की परम्परा का अनुसरण किया है। इस परम्परा के कवियों ने श्लिष्ट शब्द के द्वारा अपने आराध्य और गुरू दोनों की वन्दना की है। 'विदग्ध माधव', 'उज्ज्वल नील मणि' आदि में इस प्रकार के प्रसंग हैं जिसमें गुरू और आराध्य को एक ही शब्द से स्पष्ट किया गया है। 'उज्ज्वल नील मणि' के निम्नलिखित उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है :

> ' नामाकृष्ट रसज्ञ: शीलेनोद्दीपयन्सदानन्दम्।
> निज रूपोत्सव दायी सनातनात्मा प्रभु जयति ।।[3]

उपर्युक्त श्लोक के 'सनातनात्मा' शब्द से भगवान् श्री कृष्ण एवं गुरू दोनों का ही बोध होता है। संस्कृत-साहित्य में इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं जो इस बात को स्पष्ट करते हैं। इसी शैली में गोस्वामी जी ने गुरू और राम की वन्दना करके पूर्व परम्परा का अनुसरण किया है।

---

१. गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु: गुरुर्देवो महेश्वर:।
साक्षात्गुरु परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नम: ॥

२. ~~पूजहिं माधव पद जल जाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता।~~। बा० का०
सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥ बालकांड १२१/२

३. उज्ज्वल नील मणि ।१।

पिछले पृष्ठ का : ३. बालकाण्ड, बालकाण्ड श्लोक ७।

~~३. नाना पुराण निगमा गम सम्मत तुलसी रघुवीर गाथा ।।~~

४. जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राम मय जानि।
वन्दहुँ सबके पद कमल, सदा जारि जुग पानि ।।

3. **प्रार्थना** : वन्दना और प्रार्थना का भेद अत्यंत सूक्ष्म है । वंदना का स्वरूप विशुद्ध अभिनंदनात्मक होता है । ऐसी वन्दना जिसमें किसी प्रकार की कामना व्यक्त की जाती है, प्रार्थना मानी जा सकती है । इस दृष्टि से ऊपर जिन वन्दनाओं का विवेचन किया गया है । उनमें से कुछ में ऐसे तत्त्व मिल जाते हैं जिनसे उन्हें प्रार्थना माना जा सकता है । ऐसे प्रसंगों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते है :

१. संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु ।
बाल विनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु ।।

वा० का० दोहा २

२. सीयराम मय सब जग जानी । करौं प्रणाम जोरि जुग पानी ।
जानि कृपा कर किंकर मोहू । सब मिलि करहु ~~छाँडि~~ छल छोहू ।
निज बुधि बल भरोस मोहिं नाहीं । तातें विनय करौं सब पाहीं ।
करन चहौं रघुपति गुन गाहा । लघुमति मोरि चरित अवगाहा ।
सूझ न एकौ अंग उपाऊ । मन अति रंक मनोरथ राऊ ।

बा० का०

३. चरन कमल बन्दौं तिन्ह केरे । पुरहुं सकल मनोरथ मेरे ।।

बालकान्ड

४. बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहौं कर जोरि ।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ।।१४।।

बालकान्ड

५. सपनेहु साचेहु मोहि पर जौंहर गौरि पसाउ ।
तौं फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ ।।१५।।

बालकान्ड

६. करौं प्रनाम करम मन बानी । करहु कृपा सुत सेवक जानी ।।

बालकान्ड पृ० १०

कुछ प्रसंग प्रारम्भ में प्रस्तावना के अन्तर्गत आते हैं । इसके अतिरिक्त भी अन्य प्रमुख स्थल हैं । भरत द्वारा त्रिवेणी की याचना भी प्रार्थना के रूप में है :

७. सीता द्वारा पार्वती से वर याचना भी इसी कोटि की है :

जय जय गिरिराज किशोरी । जय महेश मुख चंद किशोरी ।
जय गज वंदन , षडानन माता । जगत जननि दामिनि दुति गाता ।
भव भय विभव पराभव करिनि । विश्व बिमोहनि जगत उधारिनि ।
नहिं तुम्र आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाउ भेद नहि जाना ।।
मोर मनोरथ जानहु नीके । बसहु सदा सुर पुर सबही के ।।

.. बाल कान्ड :

८. जानहु राम कुटिल करि मोही । लोगु कहउ गुर साहिब द्रोही ।
सीताराम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ।।
जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाँचत जलु पवि पाहन डारउ ।
चातकि रटनि घटें घटि जाई । बढ़े प्रेमु सब भाँति भलाई ।।

अयोध्या कान्ड पृ० २१६

इन प्रार्थनाओं की विशेषता यह है कि इनमें लौकिक इच्छाओं की पूर्ति की कामना नहीं व्यक्त की गई है । सभी प्रार्थनायें भगवान् राम को प्राप्त करने की कामना से प्रेरित हैं ।

किष्किंधा कांड में बालि का आत्म निवेदन भी प्रार्थना के रूप में है --

सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं ।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुंक पावहीं ।
मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीर ही ।
अस्कवन सठ हठि काटि सुरतरू बारि कीरहि बबूरही ।।

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्मबस तहँ राम पद अनुरागऊँ ।।
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यान प्रद प्रभु लीजिए ।
गहिबाह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए ।।

.. किष्कि० का० छंद १२ .

बालि केवल राम के चरन की गति चाहता है और उसे किसी बात की कामना नहीं है । उसी कांड में कर्तव्य विस्मरण के अपराध के लिए क्षमा याचना करते हुए कृपा प्राप्ति करने की प्रार्थना की गयी है :

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी । नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी ।
अतिसय प्रबल देव तव माया । छूटै राम करहु जौं दाया ।
विषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी । मैं पावर पसु कपि अति कामी ।
नारि नयन सर जाहि न लागा । घोर क्रोध तम निसि जो जागा ।
लोभ पास जेहि गर न बँधाया । सो नर तुम्ह समान रघुराया ।
यह गुन साधन ते नहिं होई । तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई ।

.. किष्कि० का० पृ० ३०२

विभीषण द्वारा की गई प्रार्थना भी इसी कोटि में आती है जिसमें प्रभु भक्ति की अपेक्षा अन्य किसी प्रकार की लौकिक कामना नहीं व्यक्त हुई है :

अब मैं कुशल मिटे भय भारे । देखिराम पद कमल तुम्हारे ।
तुम कृपाल जापर अनुकूला । ताहि न काम त्रिविध भव सूला ।
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ । सुभ आचरनु कीन्हनहि काऊ ।।
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा । तेहि प्रभु ~~कर~~ हरषि हृदय मोहि लावा ।।

सुन्दर कांड पृ० ३१८

इन प्रार्थनाओं में भी किसी प्रकार की कोई लौकिक कामना नहीं व्यक्त हुई है केवल वरन् भगवान् के चरणों में पूर्ण भक्ति की इच्छा प्रकट की गई है। इन प्रार्थनाओं द्वारा तुलसीदास जी की भगवान् राम के प्रति असीम श्रद्धा, भक्ति एवं अनन्यता का अनुभव किया जा सकता है।

प्रार्थना का सबसे मार्मिक रूप मानस के इन उपसंहारात्मक दोहों में मिलता है। अनुभव किया जा सकता है। जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है :

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंश मनि हरहु बिषम भवभीर।।
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।। १३०।।

: उत्तर कान्ड :

४ सुमिरिनी : यह स्तोत्र का वह प्रकार है जिसका प्रधान लक्षण होता है स्मरणीयता अर्थात् जिसकी रचना वाणी द्वारा बार बार उच्चार किये जाने के लिए की जाती है और इस प्रकार हृदय मे उसके अर्थ, उसके भाव संचार को सुलभ बनाया जाता है। पहले बताया जा चुका है कि संत और भक्त कवियों में अनेक ने ऐसी रचनाएँ की है। जिनका उच्चार ही पूर्ण मंगल मय है। इस दृष्टि से से सम्पूर्ण मानस को ही "सुमिरिनी" कहा जा सकता है क्योंकि उसके पुनः पुनः पाठ का महत्व प्रथित और विश्रुत है। स्वयं गोस्वामी जी ने ही मानस की स्मरणीयता: पर बल देते हुए लिखा है :

संत पंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरई।
दारुन अविद्या पंचजनित विकार जिमि रघुवरह।।

संत पंच चौपाइयों से कितनी चौपाइयों का अर्थ लिया जा सकता है

और वे चौपाइयां कौनसी हैं , इस विषय में विद्वानों में मतभेद है । यदि इसको यह अर्थ लिया जाय कि जो लोग मानस की 'सात पांच' चौपाइयां भी हृदय में धारण करेंगे , उनके प्रविधादि विकार दूर हो जायगे , तो निश्चय संपूर्ण मानस स्मरणीय , अर्थात 'सुमिरनी हो जाता है ।

इतना स्पष्ट है कि गोस्वामी जी स्वयं मानस को स्मरणीय , घोषित करते हैं । इस दृष्टि से मानस के बहुत से अंशों को सुमिरिनी मानलेने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हो सकती । 'सुमिरिनी' अथवा स्मरणीयता के दृष्टिकोण से लिखे गए अनेक प्रसंग मानस में है । ऐसे प्रसंगों में भगवान् नामों और गुणों का बार बार कथन होता है :

परशुराम जी जब राम के स्वरूप का अनुभव कर लेते हैं तो वे राम के गुणों का गान करते हुए तपस्या करने चले जाते हैं :

जय रघुवंश बन जवन भानू । गहन दनुज कुल दहन कृसानू ।।
जयसुर विप्र धेनु हितकारी । जय मद मोह कोह भ्रम हारी ।
विनय सील करुना गुन सागर । जयति बचन रचना अति नागर ।।
सेवक सुखद सुभग सब अंगा । जय सरीर छवि कोटि अनंगा ।
कहौं काह मुख एक प्रसंसा । जय महेस मन मानस हंसा ।।
अनुचित बहुत कहेउ अज्ञाता । छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता ।
कहि जय जय जय रघुकुल केतु । भृगुपति गये बनहि तप हेतु ।

.. बाल कान्ड :

उपर्युक्त उद्धरण से 'सुमिरिनी' के वास्तविक रूप का अनुभव किया जा सकता है । इसी प्रकार 'नखशिख' की श्रेणी की भगवान् राम की उठती बैठती चलती फिरती , शयन विश्राम करती अनेक प्रकार की मुद्राओं का अंकन भी गोस्वामी जी ने किया है जिनमें चित्रकूट की अनूठी कला के भी

दर्शन होते हैं । ये मुद्रायें भी ध्यान और स्मरण में सहायक होती है , इसलिए इन्हें भी "मुनिस्ली" का अंगात्मक अथवा साधक तत्त्व माना जा सकता है । इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

१. मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा । करतल चाप रूचिर सर साँधा ।
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई । फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ।
सीता केरि करेहु रखवारी । बुधि बिबेक बल समय बिचारी ।
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी । धाए राम सरासन साजी ।

अरण्यकान्ड

२. तापर रूचिर मृदुल मृग छाला । तेहि आसन आसीन कृपाला ।
प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा । बाम दहिन दिसि चाप निषंगा ।।

लंका कान्ड

३. सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं ।
जनु नील गिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं ।
भुजदंड सर को दंड फेरत रूधिर कन तन अति बने ।
जनु राय मुनी तमाल पर बैठी । बिपुल सुख आपने ।।

..लंका काण्ड

५. विरूद : इसके जो लक्षण काव्य-शास्त्र में निर्धारित किए गए हैं उनका यथावत अनुसरण करने वाले स्तोत्र मानस में नहीं हैं , फिर भी मानस में ऐसे अनेक स्तोत्र मिलते हैं जिनके कुछ अंशों पर अथवा आंशिक रूप से विरूद के लक्षण घटित होते हैं । विरूद में मुख्यत: पराक्रम , शौर्य एवं विजय का अभिनंदन होता है और ऐसी कृतियों में ओज गुण की प्रधानता रहती है । अरण्य कान्ड की निम्नलिखित स्तुति में अत्रि ने भगवान् राम विरुदि गान किया है :

प्रलंब बाहु विक्रमं प्रभो प्रमेय वैभवं
निषंग चाप सायकं धरं त्रिलोक नायकं ।

दिनेश वंश मंडनं महेश चाप खंडनं
मुनीन्द्र संत रंजनं सुरारि वृंद भंजन ।।
मनो जवैरि वंदितं अजादि देव सेवितं
विशुद्ध बोध विग्रहं समस्त दूषणा पहं ।।
नमामि इन्दिरा पतिं सुखाकरं सतां गतिं
भजे सशक्ति सानुजं शची पति प्रियानुजं ।।

.. आरण्य कान्ड ।

यद्यपि उपर्युक्त अंश स्तुति रूप में है परन्तु इसमें राम के पराक्रम शील और गुणों का वर्णन किया गया है । लंका कान्ड की स्तुतियों में अधिकाधिक विसद के लक्षण मिलते हैं । निम्नलिखित में ब्रह्मा जी ने अत्यन्त ही ओजस्वी भाषा में भगवान् राम का विरुद गान किया है :

जयराम सदासुख धाम हरे । रघुनायक सायक चाप धरे ।
भववारन दारन सिंह प्रभो । गुन सागर नागर नाथ विभो ।
तन काम अनेक अनूपछवी । गुन गावत सिद्ध मुनीन्द्र कवी ।
जसु पावन रावन नाग महा । खगनाथ जथा करि कोप गहा ।
जनरंजन भंजन सोक भयं । गत क्रोध सदा प्रभु बोध मयं ।

x x x x x x x x x

खल खंडन मंडन रम्य छमा । पद पंकज सेवित संभु उमा ।
नृप नायक देवर दान मिदं । चरनांबुज प्रेम सदा सुभदं ।।

.. लंका कान्ड :

शंकर जी भी भगवान् राम के शौर्य सौ शील का वर्णन करते हुए अपनी आन्तरिक श्रद्धा अभिव्यक्त करते हैं :

मामपि रक्षय रघुकुल नायक । धृत बर चाप रूचिर कर सायक ।
मोह महा घन पटल प्रभंजन । संसय बिपिन अनल सुर रंजन ।
अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर । भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर ।
काम क्रोध मद गज पंचानन । बसहु निरंत जनमन कानन ।
विषय मनोरथ पुंजक ज बन । प्रबल तुषार उदार पार मन ।
भव बारिधि मंदर पर मंदर । बारय तारय संसृति दुस्तर ।
स्याम गात राजीव बिलोचन । दीनबंधु प्रनतारति मोचन ।
अनुज जान की सहित निरन्तर । बसहु राम नृप मम उर अंतर ।
मुनिरंजन महि मंडल मंडन । तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन ।।

..लंकाकान्ड

परन्तु उत्तरकाण्ड में वेदों द्वारा बन्दी रूप में की गई स्तुति को शुद्ध विरुद की श्रेणी में रक्खा जा सकता है । बन्दी गणों का कार्य ही `विरुद गान` करना ही होता है सम्भवत: विरुद का आदर्श रूप यही है । इसमें `हरि गीतिका छंद` का प्रयोग किया गया है :

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने ।
दसकन्धरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने ।
अवतार नर संसार भार बिभंजि , दारून दुख दहे ।
जय प्रनत पाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमा महे ।
तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुनन्हि भरे ।
जे नाथ करि करूना बिलोके त्रिविध दुखते निर्वहे ।
भव खेद छेदन दच्छ हमकहुं रच्छ राम नमा महे ।।

..उत्तर काण्ड पृ० ४०२

६. <u>स्तुति</u> : इसमें प्रभु का गुण गान सकाम एवं निष्काम दोनों भावों में करके भक्त अपनी आत्मिक तन्मयता का अभिव्यञ्जन करता है । `मानस` की

स्तुतियों में तुलसीदास जी की भक्ति संपादन की विमलता , विशुद्धता एवं अनन्यता का महत्त्व पूर्ण रूप अनुभव किया जा सकता है । प्रत्येक स्तुति , स्तुति करने वाले के भाव और व्यक्तित्व के अनुरूप व्यक्त हुई है । परन्तु इन स्तुतियों में भक्त हृदय की भाव प्रवणता का उत्कृष्ट रूप प्राप्त होता है । मानस की स्तुतियाँ अनेक दृष्टियों से भागवत की स्तुतियों के समकक्ष रक्खी जा सकती हैं । मानस में स्तुतियों की परम्परा उस समय से प्रारम्भ होती है जब रावण से त्रस्त होकर देवतागण क्षीर सागर में जाकर रक्षा के लिए विष्णु से प्रार्थना करते हैं ।

राम जन्म के पूर्व ब्रह्मा द्वारा की गई विष्णु स्तुति में उच्च कोटि की भक्ति भावना व्यवहृत हुई है ;

जय जय सुर नायक जन सुख दायक प्रनत पाल भगवंता ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रिय कंता ।
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानै कोई ।
जो सहज कृपाला दीन दयाला करहु अनुग्रह सोई ।

.. बालकाण्ड :

डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने इस स्तुति के विषय में लिखा है "ब्रह्माकृत स्तुति में अद्वैत वेदान्त सम्मत सुराकार निराकार और नराकार रूप की ध्वनियाँ मिलेंगी । प्रथम छंद में सुराकार द्वितीय , तृतीय में निराकार और अंतिम छंद में आकार रूप की ध्वनि स्पष्ट होती है ।[1] भागवत कार ने भी इसी प्रकार विष्णु स्तुति कराई है :

सत्य व्रतं परं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य , सत्य मृत , सत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना: ।। द्वि० अ० दशम स्कन्ध

---

1. डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ..मानस माधुरी पृ० २२१ प्र० सं०

राम के महान रूप देख कर कौशल्या जी स्तुति करती हुई कहती है :

भय प्रगट कृपाला परम दयाला कौशल्या हितकारी ।
हरषित महतारी , मुनि मय हारी , अद्भुत रूप विचारी ।।
लोचन अभिरामं तनुधन स्यामं निज आयुध भुज चारी ।
भूषन बन माला नयन बिशाला सोभा सिंधु खरारी ।

.. बाल काण्ड

इसमें 'चौपैया छंद' का प्रयोग किया गया है । इस छंद में १० , ८ , १२ के विश्राम से ३० मात्राएं होती हैं और अंत में एक सगण तथा एक गुरू होता है । (।।ऽ)

इस स्तुति के विषय में भी ~~म~~ डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि ' कौशल्या कृत स्तुति में विशिष्टाद्वैत वेदान्त सम्मत ब्रह्म के पांचों अवतार पर , अन्तर्यामी , व्यूह , विभव और अर्चा के भी बड़े सुन्दर संकेत मिल जायेंगे ।।'[10]

वासुदेव ने भी इसी प्रकार की स्तुति श्रीकृष्ण के रूप को देखकर की थी :

विदितो ऽसि भवान् साक्षात पुरूष प्रकृते: पर: ।
केवला नु भवानंद स्वरूप सर्व बुद्धि हक् ।।१३ ।।
स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्टाग्रे त्रिगुणात्मकं ।
तद नुत्वहृय प्रविष्ट: प्रविष्ट इव भाव्यसे ।।

श्रि० अ० दशम स्कंध

अयोध्याकाण्ड में 'बाल्मीकि जी ने भगवान् राम को अपने आश्रम में देखकर स्तुति करते हुए उनके अवतारों का वर्णन किया है । भगवान् राम स्वयं दृष्टा एवं अविनाशी हैं । भक्तों की रक्षा के लिए ही उनका अवतार हुआ है । बाल्मीकि जी की स्तुति में आत्म समर्पण की भावना का सर्वोच्च रूप छिपा हुआ है । जब रामचन्द्र जी बाल्मीकि जी से रहने का स्थान पूछते हैं तो वे चौदह प्रकार के धामों का विवेचन करते हैं । यह चौदह धाम चौदह प्रकार की भक्ति भावना के सूचक हैं । यथार्थ में बाल्मीकि जी ने सच्चे भक्त के हृदय में राम के निवास की कल्पना की है । इस विषय में श्री मद् भागवत में लिखा है :

न काम कर्म बीजानां यस्य चेतसि सम्भव : ।
वासु देवै क निलयः सबै भागवलोतम : ।।

११।२।५०

इन चौदह प्रकार के धामों के विषय में आचार्य डा० बल्देव प्रसाद मि० ने लिखा है "वे चौदह धाम ऐसे भक्तों के हृदय हैं जिनमें श्रवणा भक्ति हो , दर्शना भक्ति हो , कीर्तना भक्ति हो , अर्चना भक्ति हो , पूजना भक्ति हो , निर्विकार भक्ति हो , अनासक्त वृत्ति हो , सन्त वृत्ति हो श्रद्धावृत्ति हो , धर्म वृत्ति हो , विश्वास वृत्ति हो , ध्यान वृत्ति हो , दास्य वृत्ति हो अथवा सहजस्नेह वृत्ति हो ।[१] भगवान् का निवास तो सच्चे भक्त के हृदय में ही हो सकता है । अंत में वाल्मीकि जी चौदहवें धाम में वात्सल्य भक्ति का वर्णन करते हैं । यह प्रसंग अत्यंत ही सरस और मनोहारी है :

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रूख पाइ कृपा निधान की ।
जो सहस सीसु अहीसु महि धरू लखनु सचराचर धनी ।
सुरकाज धरिनर राज तनु चले दलन खल निसिचर अनी ।

... अयोध्याकाण्ड

इस स्तुति की चार अर्धालियाँ प्रवृत्ति मार्ग की सूचक हैं । जड़माल में विशेष प्रसंगों पर होने वाली स्तुतियों में तुलसी की काव्य कला का महत्वपूर्ण रूप प्राप्त होता है । ~~वशिष्ठ ने जो भरत की स्तुति की है वह अत्यंत ही सराहनीय है~~ । चित्रकूट की सभा के प्रसंग में जो भरत के बुद्धि विवेक की स्तुति की गयी है, वह महाकवि गो० तुलसीदास की काव्यकलापूर्ण स्तुति का उदाहरण प्रस्तुत करती है —

पिछले पृष्ठ का :

१. डा० बल्देव प्रसाद मिश्र वही पृ० २२१

---

१. डा० बल्देव प्रसाद मिश्र मानस माधुरी पृ० १०५

भरत महा महिमा जल रासी ।
मुनिमति ठाढ़ि तीर अबला सी ।।
गा चह पार जतनु हिय हेरा ।
पावति नाव न बोहितु बेरा ।
औरू करिहि को भरत बड़ाई ।
सरसी सीपि कि सिंधु समाई ।।

.. अयोध्या काण्ड :

परन्तु संवादों के अन्तर्गत आने वाली स्तुतियों में तुलसी की कला का अत्यंत ही सुन्दर रूप परिलक्षित किया जा सकता है । तुलसीदास जी की ऐसी स्तुतियाँ भी अत्यंत ही मधुर है ।निम्नलिखित में भरत की वाणी की प्रशंसा की गई है :

विमल बिबेक धरम नय साली ।
भरत भारती मंजु मराली ।

.. अयोध्याकाण्ड :

आरण्य काण्ड की स्तुतियों में यदि सूक्ष्मता से देखा जाय तो ज्ञान , वैराग्य और भक्ति के लक्षण स्पष्ट प्राप्त होते हैं । इस काण्ड में मुख्य रूप से अत्रि , सुतीक्ष्ण , शबरी एवं जटायु की स्तुतियाँ हैं ।

अत्रि की स्तुति के तीन भाग हैं । 'नमामि , भजमि कहकर मनु प्रार्थित मूर्ति का पूर्व स्वरूप अवतार बतलाया गया है । दूसरे में भगवान् विष्णु के अवतार के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है और तीसरे में दोनों को एक ही माना गया है । यह स्तुति १२ श्लोकों में की गई है ।१। गुण ।२। श्रृंगार ।३। वीर ।४। ।५। रामायण विवेचन ।६। द्वैत अद्वैत विशिष्टा द्वैत का विवेचन ।७। गुरू-सेवा का फल ।८। भजन विधि ।९। निर्गुण ब्रह्म का विवेचन ।१०। भगत्प्राप्ति की सुगमता और अगमता ।११। नर याचना ।१२। स्तुति ~~कथन~~ माहात्म्य यह समस्त तत्व निम्नलिखित स्तुति में प्राप्त होते हैं :

Smt. HANSA MEHTA LIBRARY
THE M. S. UNIVERSITY OF BARODA

नमामि भक्त वत्सलं कृपाल शील कोमलं ।
भजामिते पदांबुजं अकामिनां स्वधा मदं ।।
निकाय श्याम सुंदर भवांबु नाथ मंदिर ।
प्रफुल्ल कंज लोचनं मदादि दोष मोचनं ।।

.. आरण्यकाण्ड : ६९ । ।

आरण्य काण्ड की सुतीक्ष्ण स्तुति में अत्यंत ही उत्कृष्ट भक्ति भावना का अनुभव किया जा सकता है । भगवान् ने उसे ~~का~~ अनायास ही दर्शन दे दिए । उसकी प्रेम पूर्ण स्तुति में चिंता स्मरण गुणगान , उद्वेग , प्रलाप , उन्माद , व्याधि , जड़ता का संचार और फिर मरण आदि स्थितियों को भी स्पष्ट किया गया है । उसकी स्तुति में कार्पण्यशरणागति का लक्षण विद्यमान है । इसमें नवधा , प्रेमा और परा भक्ति का भी विवेचन किया गया है । "हे विधि दीनबंधु " में स्मरण , "मुनिहि मिलत में "सख्य , "निर्भर प्रेम मगन " में प्रेमा और दिसि अस विदिसि पंथ नहिं सूझा " में परा भक्ति के तत्व विद्यमान हैं । वह स्तुति करता हुआ कहता है :

श्याम ताम रस दाम शरीरं । जटा मुकुट परि धन मुनि चीरं ।
पाणि चाप शर कटि तूणीरं । नौमि निरंतर श्री रघुवीरं ।।
मोह विपिन घन दहन कृशानुः । संत सरोरुह कानन भानुः ।
निशिचर करि वरूथ मृगराजः । त्रातु सदा नो भव खगवानः ।

अरण्यकाण्ड :

सीता हरण के समय जटायु ने रावण से युद्ध किया ~~परन्तु~~ जिससे उसका अंग भंग कर दिया गया । परंतु भगवान राम के द्वारा अंतिम क्रिया होने पर उसे स्वयं राम रूप प्राप्त हो गया । उसकी स्तुति में चारों कल्पों की भावनाओं एवं सगुण निर्गुण का समन्वय प्राप्त होता है । उसने विष्णु के रामावतार की स्तुति करते हुए अविरल भक्ति की कामना की है । वास्तव में इस स्तुति में नाम , रूप , लीला और धाम का भी महत्त्व स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है :

जयराम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।
दससीस बाहु प्रचंद खंडन चंड सर मंडन मही ।
पायोद घात सरोजमुख राजीव आयत लोचनं ।
नित नौमि राम कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं ।।

..आरण्यकाण्ड १.१८।२५४

शबरी की भक्ति भावना अत्यंत ही उच्च कोटि की है । वह अपने को अधम आकिंचन और अज्ञान बतलाती है और मुक्ति की कामना करती है । इसपर भगवान् राम उसे नवधा भक्ति के लक्षण बताते हैं । शबरी की अनन्यता और स्नेह का पूर्ण रूप उसकी स्तुतियाँ प्राप्त होता है :

केहि बिधि अस्तुति करउँ तुम्हारी । अधम जाति मैं जड़ मति भारी ।
अधम तें अधम अधम अति नारी । तिन्ह मह मैं अति मंद अघारी ।

..आरण्यकाण्ड ४

रावण की मृत्यु पर देवताओं द्वारा की गई स्तुतियों में ब्रह्मा जी की स्तुति महत्त्वपूर्ण है । उसमें देवताओं को निर्भय कर देने के कारण कृतज्ञता का भाव स्पष्ट किया गया है । 'राम ' शब्द से निर्गुण ब्रह्म और 'हमे ' से सगुण अवतार का बोध करा कर चारों कथाकल्पों का समन्वय किया गया है । स्तोत्रकार ने इसमें तोटक छंद का प्रयोग किया है :

जयराम सदा सुखधाम हरे । रघुनायक सायक चाप धरे
भव वारन दारन सिंह प्रभो । गुन सागर नागर नाथ विभो ।
तन काम अनेक अनूप छवी । गुन ~~सागर नागर नाथ बिभो~~ गावत सिद्ध मुनीद्र कवी ।
जसु पावन रावन नाग महा । खगनाथ जथा करि कोप गहा ।।
जन रंजन भंजन सोक भयं । गत क्रोध सदा प्रभु बोध मयं ।
अवतार उदार अपार गुनं । महिभार बिभंजन ज्ञान घनं ।।
अज व्यापक येक मनादि सदा । करुनाकर राम नमामि मुदा ।
रघुबंस विभूषन दूषनहा । कृत भूप बिभीषन दीन रहा ।।

.. लंकाकाण्ड :

रावण की मृत्यु के पश्चात् दशरथ स्वयं स्वर्ग से आकर भगवान् राम की स्तुति करते हैं । उनकी स्तुति में 'वात्सल्य भाव' की प्रधानता है । इस प्रकार माधुर्य संयुक्त वात्सल्य रस को छोड़कर वे ब्रह्म सुख को महत्व नहीं देते हैं । जब उन्हें ज्ञान का स्मरण कराया जाता है तो वे भक्ति ही चाहते हैं :

बार बार करि प्रभुहि प्रनामा । दशरथ हरषि गए सुर धामा ।।

.. लंकाकाण्ड:

इन्द्र ने अत्यंत ही दास्य-भाव स्वयं उपस्थित करके भक्ति की की प्रार्थना की है । इस प्रकार इन्द्र की स्तुति में सगुण के प्रति रुचि , भक्ति एवं कृपा दृष्टि की याचना की गई है । इसमें तोमर छंद का प्रयोग किया गया है :

जयराम सोभा धाम दायक प्रनत बिश्राम ।
धृत त्रोनवर सर चाप भुजदंड प्रबल प्रताप ।।१।।
जय दूषनारि खरारि मर्दन निसाचर धारि ।
यह दुष्ट मारेउ नाथ भए देव सकल सनाथ ।।२।।
जय हरन धरनी भार महिमा उदार अपार ।
जय रावनारि कृपाल किए जातुधान बिहाल ।।३।।
लंकेस अति बलगर्व किए बस्य सुर गंधर्ब ।
मुनि सिद्धि नर खग नाग हठि पंथ सबके लाग ।।४।।
पर द्रोह अतिसय दुष्ट पायो सो फल पापिष्ट ।
अब सुनहु दीन दयाल राजीव नयन बिसाल ।।५।।
मोहि रहा अति अभिमान नहिं कोउ मोहि समान ।
अब देखि प्रभु पद कंज गत मान पुर दुख पुंज ।।६।।
कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्यान अब्यक्त जेहि श्रुति गान ।
मोहि भाव कोसल भूप श्रीराम सगुन स्वरूप ।।७।।

बैदेहि अनुज समेत रु मम हृदय करहु निकेत ।
मोहि जानिए निजदास दे भक्ति रमा निवास ।।८।।

.. लंकाकाण्ड :

शंकर जी योगिराज हैं और मोह , संशय , भ्रम , काम , क्रोध मद आदि षड़ रिपुओं से रक्षा की प्रार्थना करते हैं :

भार्गीम रूप रघुकुल नायक । धृत वर चाप रुचिर कर सायक ।
मोह महा घन पटल प्रभंजन । संशय विपिन अनल सुर रंजन ।।
अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर । भ्रमतम प्रबल प्रताप दिवाकर ।
काम क्रोध मद गज पंचानन । बसहु निरंतर जनमन कानन ।।

विषय मनोरथ पुंज कंज बन । प्रबल तुषार उदारपमु मन ।
भव बारिधि मंदर पर मंदर । बार यताख्य संकुल दुस्तर ।।
स्यामगात राजीव विलोचन । दीनबंधु प्रनतारति मोचन ।
अनुज जानकी सहित निरंतर । बसहु राम नृप मम उर अंतर ।
मुनिरंजन महिमंडल मंडन । तुलसि दास प्रभु त्रास विखंडन ।।

.. लंकाकाण्ड

उत्तर काण्ड में वेदों द्वारा की गई स्तुति की विशेषतायें ~~विस्त~~ विसद के प्रसंग में बताई जा चुकी हैं । नारद जी अपनी स्तुति में काम क्रोध लोभ मोह आदि से मुक्ति की प्रार्थना करते हैं और संत असंत के लक्षण भी बतलाते हैं ।[१]

विप्र द्वारा की गई उत्तरकाण्ड की स्तुति में " भगवान् शंकर के

---

१. मानस उत्तर काण्ड ५१ ।१। दोहा ५१ पृ० ३७४. ३२८

के निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूप दिखाए गए हैं। प्रथम दो छंदों में निर्गुण स्वरूप वर्णित है। तीसरे चौथे में सगुण स्वरूप का वर्णन है। पाँचवें छठे में निर्गुण सगुण मिश्रित स्वरूप तथा चरित्र का वर्णन है और सातवें आठवें में प्रसन्न होने, दुःख हरने एवं रक्षा की प्रार्थना है। निर्गुण स्वरूप के विशेषण वैसे ही हैं जैसे श्रीराम जी के वेष अवतार के अनुकूल है। भगवान् राम जी और शंकर जी के विशेषण मिलान किए जा सकते हैं।[1] इसमें भुजंग प्रयातवृत्त छंद का प्रयोग किया गया है :

नमामी शमी शान निर्वाण रूपं । विभुंव्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाश माकाश वासं भजेहं ।।
निराकार ओंकार मूलं तुरीयं । गिरा ज्ञान गोतीतं मीशं गिरीशं
करालं महाकाल कालं कृपालं । गुणागार संसार पारं नतोहं ।।
तुषाराद्रि संकाश गौरं गंभीरं । मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं ।
स्फुरन् मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा । लसद् भाल बालेंदु कंठे भुजंगा ।
चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं । प्रसन्नाननं नील कंठं दयालं ।।
मृगाधीश चर्माम्बरं मुंड मालं । प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ।
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । अखंडं अजं भानु कोटि प्रकाशं ।।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूल पाणिं । भजेहं भवानीपतिं भाव गम्यं ।।
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी । सदा सज्जनानंद दाता पुरारी ।
चिदानंद संदोह मोहा पहारी । प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ।।
न यावद् उमानाथ पादारविंदं । भजंतीह लोके परे वा नराणां ।।
न तावत् सुखं शांति संताप नाशं । प्रसीद प्रभो सर्व भूताधिवासं
न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं । प्रभो पाहि आपन्न मामीश शंभो ।।२

१. मानस पीयूष : पृ० ६१० उत्तरकाण्ड
२. उत्तरकाण्ड

निष्कर्ष : गोस्वामी जी ने अपने मानस में भगवान राम के उच्च चरित्र का अभिव्यंजन किया है जिसका अनुसरण भारतीय जन जीवन के लिए मधु रस के समान है । सामयिक परिस्थितियाँ एवं भक्ति परम्परा से समन्वित तुलसी की भक्ति भावना उनकी दार्शनिकता का यथार्थ परिचय देती है । "जिस प्रकार "भागवत पुराण" के मंगल श्लोक में अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है उसी प्रकार "राम चरित मानस" में भी ।[1] "भागवत की भांति मानस का ~~[illegible]~~ प्रतिज्ञा वाक्य भी उसकी निगम सम्मतता की घोषणा करता है ।[2] उनका सम्पूर्ण मानस भगवान राम एवं सीता की भक्ति का ऐसा ~~[illegible]~~ स्त्रोत माना जा सकता है जिसकी अजस्त्र धारा कभी बंद नहीं हो सकती और न कभी उसमें काम क्रोध लोभ मोह का बीज ही उत्पन्न हो सकता है । वह सुरसरिता के समान स्वच्छ और पवित्र है । उसमें वेद पुराण उपनिषद आदि सभी का मक्खन मिला हुआ है जिसको ग्रहण कर आत्मिक तृप्ति और मोक्ष की आशा की जा सकती है । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गोस्वामी जी के विषय में लिखा है कि "तुलसी का व्यक्तित्व उनके ग्रंथों में बहुत स्पष्ट हुआ है । अत्यंत विनम्र भाव, सच्ची अनुभूति, के साथ अपने आराध्य पर अटूट विश्वास उनके व्यक्तित्व के प्रधान तत्व हैं । आराध्य की ऐसी एक निष्ठा, भक्ति, ऐसा अनन्य विश्वास और उसकी अडिग आस्था संसार के इतिहास में दुर्लभ है ।[1] इस प्रकार "मानस" को भक्ति साहित्य की सर्वोच्च रचना कही जा सकती है ।

<u>विनय पत्रिका</u> : तुलसी की महान आध्यात्मिक चेतना का उदाहरण "विनय पत्रिका" ~~[illegible]~~ कही जा सकती है । इसमें उनकी भक्ति भावना एवं अनन्यता का विशुद्ध रूप

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी .. हिन्दी साहित्य पृ० २२४ .२२५

1, 2. डा० उदयभानु सिंह .. तुलसी दर्शन .. मीमांसा

१. रा० ।७।७३। ३.४ अ० रा० १।१।२२

रा० ।७।११०।८ ना० पु० १।१६।३३

प्राप्त होता है। डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने विनय पत्रिका के विषय में लिखा है कि "विनय में एक प्रकार की प्रबंधात्मकता तो है ही, परन्तु प्रधानतया उसे प्रगीति ~~मुक्तमुक्त~~ मुक्तक रचना कहना चाहिए, क्योंकि उसके प्रत्येक पद अपने में पूर्ण और स्वतंत्र है तथा प्रत्येक में कवि के अन्तं जीवन का ही दिग्दर्शन है।"[१] विनय पत्रिका में तुलसी का भक्ति रस दर्शन चरम ~~सीमा~~ सीमित हो गया है। इस विषय में विनय पीयूषकार ने लिखा है कि "इसमें सब शास्त्रों के सिद्धान्त दिए गए हैं। द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टा द्वैतवाद, शैववाद सभी वादों के अनुसार व्याख्या की गई है।"[२] विनय पत्रिका में तुलसीदास जी ने अपनी विनय भावना को राम के चरणों में उन्मुख किया है। वे सांसारिक वैभव की प्राप्ति के लिए विनय नहीं करते हैं वरन् भगवान् राम के चरणों में निष्काम प्रेम की कामना करते हैं। डा० रामचन्द्र मिश्र ने विनय पत्रिका के दार्शनिक तत्व के विषय में लिखा है कि 'विनय पत्रिका तुलसी का विनय काव्य है, जिसमें उनके सम्प्रदाय की भक्ति भावना, जो दास्या शक्ति पर आधारित है, ~~साकार रूप~~ साकार हो उठी है। इसके फलस्वरूप ही राम के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा और पूज्य भावनाओं का प्रस्फुटन भी हुआ है।[३]

यदि विनय पत्रिका के भक्ति स्वरूप पर विचार किया जाय तो उसमें निम्नलिखित विशेषतायें प्राप्त होंगी :

१. आराध्य का नाम गुण-कथन आदि
२. आराध्य का कीर्तन
३. आराध्य का स्मरण
४. आराध्य का पाद-पूजन
५. आराध्य की वंदना
६. आराध्य के प्रति दास्य भाव की वृत्ति
७. सख्य भाव का प्रदर्शन
८. आत्म समर्पण की भावना

---

१. डा० बल्देव प्रसाद मिश्र .. मानस माधुरी पृ० २७५
२. विनय पीयूष प्र० खं भूमिका पृ० १४
३. डा० रामचन्द्र मिश्र .. हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास पृ० २२५

उपर्युक्त विभाजन के अनुसार विनय पत्रिका के स्तोत्र ३ प्रकार के हैं :

।१। संस्कृत परम्परा के शुद्ध स्तोत्रात्मक छंद-इस प्रकार के स्तोत्रों में गोस्वामी जी ने अपनी भाषा को संस्कृत के सन्निकट पहुँचा दिया है। जयदेव का सा माधुर्य एवं कलात्मक रूप तुलसी के इन स्तोत्रों में प्राप्त होता है। जयदेव की भाँति चौबीस अवतारों के विषय में तुलसी ने भी अपनी विनय पत्रिका में लिखा है।[1]

।२। दार्शनिक भावना सम्बंधी स्तोत्र

।३। विशुद्ध आत्म निवेदनात्मक।

प्रारम्भ के ७० पद जिनमें विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुतियाँ की गई हैं स्तोत्रों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। परन्तु अधिकांश स्तुतियों में तुलसीदास जी ने भगवान् राम के चरणों की ही भक्ति की याचना की है। परन्तु पूर्ण रचनायें उनकी उन्होंने अपनी अनन्य निष्ठा और विश्वास रखे हुए राम के समक्ष अपनी दीनता, मान-मर्षता, भयदर्शना, विचारणा, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य आदि विनय की सातों भूमिकाएं प्रस्तुत की हैं जिनमें उनके प्रति उनकी श्रद्धापूर्ण रूप से अभिव्यंजित है।[2]

अब इसके स्तोत्रात्मक रूप का विवेचन किया जा रहा है।

1. मंगलाचरण- ~~मंगलाचरण~~ 'विनय पत्रिका' में मंगलाचरण करके तुलसीदास जी ने अपनी पूर्व परम्परा का अनुसरण किया है। परन्तु गणेश स्तुति में भी वे 'राम सिय' को ही अपने मानस में बसाना चाहते हैं :

गाइये गणपति जग वंदन। संकर सुवन भवानी नंदन ।।१
सिद्धि सदन गज वदन विनायक। कृपा सिंधु सुंदर सब लायक ।।
मोदक प्रिय मुद मंगल दाता। विद्या वारिधि बुद्धि विधाता ।।३।।

---

१. विनय पत्रिका

२. डा० राम चंद्र मिश्र .. हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास पृ० २२४

मांगत तुलसिदास कर जोरे । बसहु राम सिय मानस मोरे ।।[1]

.. विनय पत्रिका पद १

2. वन्दना – वन्दना विनय पत्रिका की वन्दनायें पूर्ण रूपेण स्तुति परक हैं । एक प्रकार से उन्हें स्तुति ही कहा जा सकता है । राम , सीता , शिव , हनुमान , गंगा , यमुना आदि की स्तुति कर तुलसीदास जी ने भगवान् राम के चरणों में रत रहने का ही वरदान मांगा है । उन्हें सांसारिक वैभव की कामना नहीं है केवल ' राम ' के प्रति असीम भक्ति और निष्ठा ही उनकी स्तुतियों का उद्देश्य है । देवी देवताओं के अतिरिक्त तीर्थ स्थानों , पवित्र नदियों , राम के ~~जर्~~ पार्षदों , श्री विंदुमाधव आदि की भी वन्दनाएँ की गई हैं । ' विनय पत्रिका ' में इसके अनेक उदाहरण है :

<u>सूर्य स्तुति</u> :

वेद पुरान प्रगट जसु जागै । तुलसी राम भगति वर मांगै ।।[1]

<u>शिव स्तुति</u>

देहु काम रिपु राम चरन रति तुलसिदास कहुं कृपा निधाना ।।[2]

<u>गंगा स्तुति</u> :

रघुबीर पद प्रीति निर्भर मातु , दास तुलसी त्रास हरनि भव भामिनी ।[3]

<u>सीता स्तुति</u>

तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुन गन गाइ ।।[4]

<u>राम स्तुति</u>

दास तुलसी चरन सरन संशय हरन देहि अवलंब वैदेहि भर्ता ।[5]

स्तुति : ' विनय पत्रिका ' की स्तुतियों में ' तुलसी ने अपनी

---

१. विनय पत्रिका पद १
२. वही पद २
३. वही पद १८
४. वही पद ४१
५. वही पद ४५

रति और भक्ति को अक्षुण्ण रखने की प्रेरणा प्राप्त की है। सम्पूर्ण देव, राम सभा के पार्षद, तीर्थ स्थान आदि राम पद प्रेम को उद्दीप्त करने के कारण उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत समाहित होंगे ।।[1] तुलसी को तो केवल राम के चरणों का अनुराग चाहिए :

> चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु रिधि सिधि
> विपुल बड़ाई ।
> हेतु रहित अनुराग रामपद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ।।
>
> .. विनय पत्रिका

अनेक स्तुतियों में तुलसीदास जी ने राम के स्वभाव, गुण और शील आदि का भली प्रकार अनुभव किया है :

> रामरावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाउ
> जान्यो हर, हनुमान, लखन, भरत ।।
> जिन्हके हिये सुथरु राम प्रेम सुरतरु ।।
> लसत सरल सुख फूलत फरत ।।
>
> .. वही .. २५१

दार्शनिक भावना सम्बंधी स्तोत्र : इस प्रकार की स्तुतियों में दर्शन तत्व अधिक मात्रा में विद्यमान है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस विषय में लिखा है कि "परमार्थ दृष्टि से शुद्ध ज्ञान दृष्टि से तो अद्वैत मत गोस्वामी जी को मान्य है, परन्तु भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार भेद करके चलना वे अच्छा समझते हैं ।।[2] जीवन और ब्रह्म का सम्बंध, माया और जीव का सम्बंध आदि सभी भावनाएं तुलसी की विनय पत्रिका में हैं। परन्तु उसी ब्रह्म के द्वारा सांसारिक मायाजाल से मुक्ति मिल सकती है :

---

१. डा० राम चंद्र मिश्र वही पृ० २५३

२. आचार्य राम चन्द्र शुक्ल .. हिन्दी .. साहित्य का इतिहास पृ० १३५

कृपा डोरि बंसी पद अंकुश , परम प्रेम मृदु चारो
एहि विधि बेधि हरहु मेरो दुख , कौतुक राम तिहारो ।।
है श्रुति विदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीननि छोरै ।
तुलसिदास येहि जीव मोह रजु , जेहि बांध्यो सोइ छोरै ।।

वि० प० १०२

ब्रह्म की सृष्टि के विषय में विभिन्न मत हैं । अद्वैतवादी उसे असत्य द्वैतवादी उसे सत्य तथा द्वैताद्वैतवादी उसे सत्यासत्य दोनों मानते हैं । वे ज्ञान , कर्म और योग के स्थान पर केवल ब्रह्म को ही सब कुछ समझते हैं :

केशव कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र अति , समुझि मनहि मन रहिये
शून्य भीति पर चित्र , रंगनहिं , तनु बिनु लिखा चितेरे
धोये मिटै न , मरै भीति दुख पाइय इहितन हेरे ।।
रविकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।
बदनहीं सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ।
कोउ कह सत्य , झूठ कह कोऊ युगल प्रबल कोउ मानै ।।
तुलसिदास परि हरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ।।

... वही ..१११

माया-मोह से मुक्ति का एक मात्र उपाय 'प्रभु' की ही कृपा कामना ही हो सकती है :

नाचत ही निसि दिवस मर्यो ।
तब ही तैं न भयो हरि थिर जबतें जिवनाम धर्यो ।
बहुवासना विविध कंचुकि भूषन लोभादि भर्यो ।।
चर अरु अचर गगन जल थल मैं कौन न करि स्वांग कर्यो ।।
जेहि सुनते बस होहु रीझि करि सो मोहि सब बिसर्यो ।
तुलसिदास निज भवन दुवार प्रभु दीजै रहन पर्यो ।।

..विनय पत्रिका ९१

विशुद्ध आत्म निवेदनात्मक : विनय पत्रिका के तीसरे प्रकार के पद "आत्म निवेदनात्मक" है । इस प्रकार के पदों में अपने कष्टों से मुक्ति की प्रार्थना की गई है । इस प्रकार की भक्ति के विषय में डा० उदय भानु सिंह ने लिखा है कि "भक्त के द्वारा भगवान् के प्रति सर्वतोभावेन अपने शरीर आदि का एक मात्र उसी के भजनार्थ किया गया अर्पण , आत्म निवेदन है । [1] वह हर प्रकार से भगवान् की ही शरण चाहता है । उनकी "विनय पत्रिका" तो एक प्रकार का आवेदन पत्र है जिसकी संस्तुति उन्होंने प्रत्येक देवता से कराई है । वह भगवान के चरणों में स्थान पाने के लिए हर प्रकार से अनुनय विनय करते हैं । संसार के माया मोह से मुक्ति प्राप्त कर प्रभु का सान्निध्य ही उनके आत्म निवेदन का उद्देश्य है । इस प्रकार की भी स्तुतियाँ "विनय पत्रिका" में विद्यमान हैं :

१. सुख धाम राम श्रम भंजन ,
हौं अति दुखित त्रिविध श्रम पाई ।
यह जिय जानि दास तुलसी कहँ ,
राखहु सरन समुझि प्रभुताई ।।

.. पद २४८

२. मैं कहँ नाथ । बुझि ये , यह गति ,
सुख निधान निज पति बिसरायौं ।
अब तजि रोष करहु करुना हरि ।
तुलसिदास सरनागत आयौं ।।

.. पद २४३

३. तुलसिदास प्रभु । कृपा करहु अब ,
मैं निज दोष कछु नहिं गोयो ।।

.. पद २४५

---

१. डा० उदयभानु सिंह .. तुलसी दर्शन .. मीमांसा पृ० २०६

४. पाहि , पाहि राम । पाहि , राम भद्र , राम चंद्र ।
सुजस स्रवन सुनि आयो हौं सरन ।
दीन बंधु । दीनता दरिद्र दाह दोष दुख
दारुन दुसह दर दुरति हरन ।।

.. पद २४८

५. राम सखिह सरन , राखि आये सब दिन ।

.. पद २५२

६. मेरी तौ थोरी है , सुधरैगी बिगरियौ , बलि ,
राम । रावरी सौं रही रावरी चहेत ।।

पद ..१५६

इस प्रकार के सभी आत्म निवेदनों में स्तोत्रकार 'भव वारिधि ' सर्व जागतिक माया मोह , एवं भ्रम तापों से मुक्त होने के लिए प्रभु की शरण चाहता है ।

निष्कर्ष : इस प्रकार ' विनय पत्रिका ' के पदों को तुलसी की 'भक्ति भावना ' का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है । उनकी दार्शनिकता एवं आत्म निवेदन का जितना श्रेष्ठतम रूप इस ग्रंथ में प्राप्त होता है वैसा अन्यत्र नहीं है । उनकी 'विनय पत्रिका ' समस्त भक्ति तत्वों का निचोड़ कही जा सकती है । इस विषय में आचार्य विश्व नाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि विनय पत्रिका तुलसी साहित्य में ही नहीं हिन्दी साहित्य में प्रत्युत उससे भी आगे बढ़कर भारतीय साहित्य में विनय संबंधी विशिष्टकृति है । ऐसी प्रौढ रचना संस्कृत में 'स्तुति कुसुमांजलि ' मानी जाती है । पर विनय पत्रिका में जिस प्रकार का प्रच्छन्न बंध है वैसा उसमें नहीं ।[१] वास्तव में स्तोत्रकार ने अपने तात्विक सिद्धान्तों का पूर्ण समर्थन विनय पत्रिका में ही किया है । डा० राम चंद्र मिश्र का भी मत इस विषय में समीचीन है । उन्होंने लिखा है 'यों 'मानस ' जैसे महाकाव्य में सैद्धान्तिक रूप से भक्ति का प्रतिपादन है और स्थल स्थल पर कौशल्या , भरत , निषाद , हनुमान , शबरी आदि के जीवन में भी उसकी परिणति हुई है , किंतु रामचरित की कथा के जीवन में डूबती उतराती प्रतीत होती है । इसके विपरीत विनय पत्रिका में प्रथम पद से लेकर

अन्तिम पद तक उसका अविच्छिन्न स्रोत आप्लावित है और विनय के माध्यम से भक्ति की जितनी भी स्थितियाँ और वृत्तियाँ हो सकती हैं भक्तकवि तुलसी ने उन सभी को इसमें समेटने की पूरी चेष्टा की है। [१]
इस विषय में तुलसी साहित्य के महान मर्मज्ञ डा० बल्देव प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि 'उन्होंने भावों के अनुकूल विशिष्ट राग रागिनी का चुनाव करके एक बहुत बड़ा काम किया है, जिसकी ओर खेद है कि आजकल के पाठकों का ध्यान बहुत कम जाता है। एक एक राग या रागिनी में अलग अलग रस प्रकाश भाव व्यक्त करने की विशिष्ट क्षमता रहती है।' [२]

अन्य रचनायें : "रामलला नहछू"

इस रचना में गोस्वामी जी ने भगवान् राम के संस्कार विशेष का विवेचन किया है क्योंकि 'नहछू' का तात्पर्य है 'संस्कार गत एक विशेष रीति'। यह रचना 'सोहर छंद' में हुई है और प्रारम्भ का मंगलाचरण भी 'सोहर छंद' में हुआ है। स्तोत्रकार ने अपनी इस रचना के प्रारम्भ में शारदा, गणेश एवं पार्वती जी की वन्दना की है :

आदि सारद गनपति गौरि मनाइयहो ।
रामलला कर नहछू गाइ सुनाइयहो ।।
जेहि गाये सिधि होय परम निधि पाइयहो ।
कोटि जनम कर पातक दूरि सो जाइयहो । १।।
.. रामलला नहछू

पिछले पृष्ठ का

१. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र .. हिन्दी साहित्य का अतीत पृ० ~~[illegible]~~ ३१५

१. डा० राम चंद्र मिश्र .. हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास पृ० २२०
२. डा० बल्देव प्रसाद मिश्र .. मानस माधुरी पृ० २७५

एक बात और विचारणीय है कि `सोहर ` मांगलिक गान को कहा जाता है। `सोहिलो `शब्द का प्रयोग गीतावली में भी हुआ है और नहछू को भी साहिलो कहते हैं। इस प्रकार इसे मंगल की संज्ञा दी जा सकती है।

वैराग्य संदीपिनी : दोहा चौपाइयों में लिखे इस ग्रंथ में संत स्वभाव संत महिमा एवं शान्ति का विवेचन हुआ है। `आरम्भिक प्रस्तावना के अनंतर संत के रूप का निरूपण है फिर उसकी प्रशस्ति है और अंत में शान्ति का कथन है।[१] प्रारम्भ में की गई स्तुति को मंगलाचरण के अन्तर्गत रखा जा सकता है जिसमें राम लक्ष्मण एवं सीता की ही वंदना की गई है।

राम वाम दिसि जानकी , लषन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यान मय , सुरतरु तुलसी तोर।।
तुलसी मिटै न मोह तम , किये कोटि गुन ग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं , बिनु रवि कुल रविराम।।
सुनत लखत श्रुति नयन बिनु , रसना बिनु रस लेत।
वास नासिका बिनु लहै , परसै बिना निकेत।।
अज अद्वैत अनाम , अलख रूप गुन रहित जो।
मायापति सोइ राम , दास हेतु नर तनु धरेउ।।४।।

.. वैराग्य संदीपिनी :

भक्तों के जो पांच भाव माने गए हैं उनमें `शान्ति भाव ` का स्थान प्रथम है और जो जगदि राम की वृत्ति जगाता है।

पार्वती मंगल एवं जानकी मंगल

तुलसीदास जी ने सीता और पार्वती के `मंगल ` दो पुस्तकों में लिखे हैं। पार्वती के मंगल का नाम पार्वती मंगल और जानकी के मंगल का नाम

---

१. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र .. हिन्दी साहित्य का अतीत पृ० २६४

जानकी मंगल है । इन दो रचनाओं में संस्कृत के मंगल छंदों की शैली प्राप्त होती है । इस विषय में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि ये मंगल ग्रंथ हैं ,मांगलिक अवसर पर गाए जाने के लिए लिखे गए हैं ।[१]

पार्वती मंगल के आरम्भ के छंदों में मंगलाचरण के रूप में गुरू राम शंकर पार्वती की स्तुतियां की गई हैं । परन्तु तुलसी के अन्तः करण में 'सीताराम का ही ध्यान है । निम्नलिखित से यह बात स्पष्ट हो जाती है :

विनइ गुरूहि गुनि गनहि गिरिहि गन नाथहि ।
हृदय आनि सियराम धरे धनु माथाहि ।।१।।
गावऊँ गौरि गिरीस विवाह सुहावन ।
पाप नसावन , पावन मुनि मन भावन ।।२।।
कवित रीति नहिं जानउँ , कविन कहावउं ।।
शंकर चरित सुसरित मनहिं अन्हवावउं ।।३।।
पर अपवाद विवाद विदूषित वरिनहि ।
पावनि करउं सो गाइ , भवेस भवानिहि ।।४।।

जानकी मंगल

अपनी इस रचना में स्तोत्रकार ने गुरू , गणेश , शिव, शारदा , शेषनाग , एवं कवियों की स्तुतियां की है :

गुरू गनपति गिरि जायति गौरि गिरायति ।
सारद सेष सुकवि स्तुति संत सरल मति ।।१।।
हाथ जोरि करि विनय सबहिं सिर नावौं ।।
सिय रघुवीर विवाहु जथा मति गावौं ।।२।।

जानकी मंगल

---

१. आचार्य विश्व नाथ प्रसाद मिश्र ..हिन्दी .. साहित्य का अतीत पृ० २२६

इन दोनों रचनाओं में `सोहर छंद ` का प्रयोग हुआ है । पार्वती मंगल में १४८ और जानकी मंगल में १६२ सोहर केवल है ।
`रामाज्ञा प्रश्न `: यह शकुन विचार की पुस्तक कही जा सकती है । `रामाज्ञा प्रश्न ` का तात्पर्य है राम की आज्ञा से प्रश्न । इस प्रकार से इस राम की आज्ञा से पूछे गए प्रश्नों का उत्तर ही इस पुस्तक में दिया गया है । यदि इसे `शकुनवली `कहा जाय तो उचित ही होगा । इसमें स्तोत्रकार ने `सुमिरिनी ` द्वारा पवनसुत , लक्ष्मण , राम , भरत , लक्ष्मण आदि का स्मरण करते हुए `राम भक्ति ` की ही कामना की है :

सूर सिरोमनि साहसी , सुमति समीर कुमार ।
सुमिरत सब दुख संपदा , मुद मंगल दातार ।।१।।
सत्रु समन पद पंकरूह , मुरि करहु सब काज ।।
कुसल खेम कल्यान सुभ , सगुन सुमंगल साज ।।२।।
भरत भलाई की अवधि , सील सनेह निधान ।
धरम भगति माया समय , सगुन कहब कल्यान ।।३।।
सेवक पाल कृपाल चित , रविकुल कैरव चंद ।
सुमिरि करहु सब काज सुभ , पग पग परमानंद ।।४।।
लखिमन पद पंकज सुमिरि , सगुन सुमंगल पाइ ।
जय विभूति कीरति कु कुसल , अभिमत लागु अघाइ ।।५।।
तुलसी कानन कमल बन , सकल सुमंगल वास ।
राम भगति हित सगुन सुभ , सुमिरत तुलसीदास ।।६।।

.. रामाज्ञा प्रश्न :

बरवै रामायण : इसमें कथा को `बरवै छंद ` में लिखा गया है । इसमें भी सात काण्ड हैं । उत्तर काण्ड में राम एवं अन्य देवी-देवता विषयक `बरवै संग्रहीत ` है । `बरवै ` के लिए ध्रुव और कुरंग आदि नामों का भी प्रयोग किया जाता है ।

यह अर्ध सम मात्रिक छंद है । इसमें विषम चरणों मे १२ , १२ और सम चरणों में ७, ७ मात्राएं होती हैं । अंत में जगण होता है । ।ऽ। । इस नियम से यदि मानस के `बरवै `देखे जायं तो लगभग १६ छंदों में पति भंग दोष है । `बरवै ` अवधी भाषा का श्लोक प्रचलित छंद है । निम्नलिखित `बरवै ` इसके प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किए जाते है जिनमें राम आदि देवताओं की स्तुतियाँ की गई हैं :

दोहावली : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने `दोहावली ` के विषय में लिखा है कि इसमें मुख्य रूप से दो विषय वर्णित हैं भक्ति और नीति । भक्ति के अन्तर्गत तुलसीदास ने साधना का स्वरूप स्पष्ट किया है । वे स्नेह भक्ति में उभय पक्ष में समता नहीं स्वीकार करते । सम प्रेम के बदले विषम प्रेम को उत्तम मानते हैं ।[१] वास्तव में दोहावली में भक्ति का अत्यंत ही यथार्थ रूप उपस्थित किया गया है । `दोहावली ` चातक विषयक प्रेम की उत्तम रचना कही जा सकती है । वह चातक की भाँति प्रेम में प्रिय पक्ष की परूषता का विचार नहीं करते हैं । गोस्वामी जी ने चातक की अनन्यता और उसके व्रत का निरूपण इसमें विस्तार से दिया है । चातक के ~~मेघ~~ मेघ के समान ही तुलसी भी `आराध्य` `राम ` को ही सब कुछ समझते हैं । वह अनेक कष्ट मिलने पर भी राम की भक्ति नहीं त्याग सकते :

जो घन बरसै समय सिर जो भरि जनम उदास ।
तुलसी याचित चातकहि तऊ तिहारी आस ।।
.. दो०

चातक की तृषा वृद्धि ही उसके ~~प्रि~~ प्रेम का उदाहरण है :

चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि ।
प्रेम त्रिषा बाढ़त भली घटे घटैगी आनि ।।
.. दो०

---

१. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ..हिन्दी साहित्य का अतीत पृ० २६८

उसने तो अपना सब कुछ राम में समर्पित कर दिया है । प्रभु को छोड़ कर उसकी आशा की पूर्ति किसी से नहीं हो सकती :

नहिं जाचत नहिं संग्रही सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसी मानी मांगेहि को वारिद बिन देइ ।।

.. दो०

भक्ति के साथ साथ राम , भरत , लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न की भी वन्दना की गई है ।

राम

तुलसी बिलसत नखत निसि सरद सुधाकर साथ ।
मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजस सिसु हाथ ।। १००

भरत

भरतहि होइन राज मदु बिधि हरि हर पर पाइ ।
कबहुं कि कांजी सीकरनि छीर सिंधु बिन साइ ।।

लक्ष्मण :

ललित लखन मूरति मधुर सुमिरहु सहित सनेह ।
सुख संपति कीरति बिजय सगुन सुमंगल गेह ।। ३१०

सत्रुघ्न :

नाम सत्रु सूदन सुभग सुषमा सील निकेत ।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख सकल सुमंगल देत ।।२११

चारों भ्राताओं के अतिरिक्त मानस की भांति तुलसीदास जी ने दशरथ , कौशल्या , सुमित्रा , सीता आदि की भी महिमा का गान किया है :

दशरथ :

दसरथ नाम सुकाम तरू फलइ सकल कल्यान ।
धरनि धाम धन धरम सुत सदगुन रूप निधान ।।२१८ ।।

कौशल्या :

कौसल्या कल्यान मइ मूरति करत प्रनाम ।
सगुन सुमंगल काज सुभ कृपा करहिं सियराम ।।

सुमित्रा :

सुमिरि सुमित्रा नाम जग जेतिय लेहिं सनेम ।
सुअन लखन रिपुदमन से पावहिं पति पद प्रेम ।। २१३ ।।

अंत में जग जननी सीता की बंदना करता हुआ कवि कहता है :

सीता चरन प्रनाम करि सुमिरि सुनाम सुनेम ।
होहिं तीय पति देवता प्राननाथ प्रिय प्रेम ।। २१४ ।।

उन्होंने राम चरित मानस की भाँति इसमें भी काशी की महिमा का गान किया है :

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानिकर ।
जहं वस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ।।२३७ ।।

काशी में तो त्रिनेघ धारी शंकर का निवास है । अत: स्तोत्रकार उनका भी वंदन करता है :

जरत सकल सुर बृंद विषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपालु संकर सरिस ।।

दो० २३८

इस प्रकार दोहावली में भी तुलसीदास जी की भक्तिभावना का यथार्थ परिचय प्राप्त हो जाता है । उनका क्षण प्रतिक्षण भगवान राम का ही

तादात्म्य प्राप्त करना चाहता है । इस विषय में डा० पीतम्बर दत्त बड़थ्वाल ने लिखा है " तादात्म्य की अनुभूति के लिए यह आवश्यक है कि सगुण की यह सेवा निष्काम हो । जब तक मनुष्य पूर्ण रूप से इच्छा रहित न हो जाय तब तक उसे मुक्ति नहीं मिल सकती ।[1] 'दोहावली' की भक्ति भावना के विषय में आचार्य चंद्रबली पाँडेय ने लिखा है कि "कवितावली की भाँति ही दोहावली भी संग्रहतीत ग्रन्थ है । इसमें भी 'चातक चौतीसा' की रचना तो एक साथ, एक लक्ष्य से हुई है । पर दोहे यदा तदा बनते रहे हैं । इसमें कुछ दोहे ऐसे भी आ गए हैं जिनका सम्बंध उक्त बीसी और उक्त पीड़ा से भी है ।"[2]

हनुमान बाहुक : इसमें स्तोत्रकार ने चौवालीस छंदों में हनुमान जी की प्रार्थना की है । अपनी भक्ति भावनायें तुलसीदास जी ने हनुमान जी को भी अधिक महत्व दिया है । उन्हीं की कृपा से उन्हें भगवान् राम के दर्शन हुए थे । कहा जाता है कि स्तोत्रकार ने अपनी बाहु पीड़ा से मुक्ति के लिए ही इसकी रचना की थी परन्तु उनका मूल उद्देश्य अपने सहायक हनुमान जी का पृथक यशोगान करना ही था । 'बाहुक' के छंदों से इस तथ्य का स्पष्टीकरण हो जाता है :

सिंधु तरन सिय सोच हरन रवि बाल बरन तनु ।
भुज बिसाल, मूरति कराल, कालहु को काल जनु ।
गहन दहन निर दहन लंक, नि: संक, बंक युव ।
जातुधान बलवान मान मद दवन पवन सुख ।।
कह तुलसिदास सेवत सुलभ, सेवक हित संतत निकट ।
गुन गनत, नमत, सुमिरत, जपत समन सकल संकट निकट ।।

छं० १

---

१. डा० पीतम्बर दत्त बड़थ्वाल .. तुलसीदास पृ० १६६
२. आचार्य चन्द्रबली पाँडेय .. तुलसीदास

कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ै मानो ,
नाप के भाजन भरि जलनिधि जल भो ।
जातु धान यावन परविन को दुर्ग भयो ,
महामीन बास तिमि तोमनि की थल भो ।
कुंभकर्न रावन पयोद नाद ईंधन को
'तुलसी ' प्रताप जाको प्रबल अनल भौं ।
भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान :
सरिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो ।।७।।

.. हनुमान बाहुक

इसमें मुख्य रूप से छप्पय , फूलना और घनाक्षरी छंदों का प्रयोग किया गया है । इसे हनुमान जी की 'विरुदावली ' कहा जा सकता है ।

श्रीकृष्ण गीतावली : प्रस्तुत रचना गोस्वामी जी की समन्वयात्मक विचारधारा की उत्कृष्ट उदाहरण कही जा सकती है । उन्हें रामचंद्र जी का कट्टर उपासक कहा जाता है परन्तु श्रीकृष्ण गीतावली की रचना से उन्हें ऐसा नहीं माना जा सकता । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसके समर्थन में लिखा है कि इन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति वही वृत्ति दिखलाई है जो राम के प्रति । इन्होंने जिस प्रकार भगवान् के लोक रक्षक रूप का वर्णन किया है उसी प्रकार उनके लोकरंजक रूप का भी ।[१] डा० राम चन्द्र मिश्र ने भी इस तथ्य की सत्यता के विषय में अपना मत देते हुए लिखा है 'यों गोस्वामी जी राम के अनन्य भक्त थे , किंतु राम के चरित्र के समान कृष्ण चरित्र को भी अपने काव्य का विषय बनाकर उन्होंने अपनी उदार वृत्ति और हृदय की विशालता का परिचय दिया है ।[२]

---

१. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र .. हिन्दी साहित्य का अतीत पृ० ३०३
२. डा० रामचन्द्र मिश्र .. हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास पृ० १५६

श्रीकृष्ण गीतावली ६१ पदों की रचना है जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण जी के बाल रूप एवं गोपी विरह का विशेष विवेचन किया गया है । विरह वर्णन वर्णन में भ्रमर गीत ` प्रसंग का अनुसरण करके गोपिकाओं के प्रेम , विषाद और हास की अभिव्यञ्जना की गई है । उनकी आस्था और भक्ति का स्वरूप इस रचना में पूर्ण रूपेण स्पष्ट हुआ है ।

तुलसी के इस काव्य में भगवत् रूप का प्रकाशन स्थान स्थान पर हुआ है :

नन्दनन्दन मुख की सुन्दरता कहिन सकल स्तुति सेष उमावर ।
तुलसिदास त्रैलोक्य विमोहन रूप कपट नृप त्रिविध सूल हर ।।

.. श्री गीतावली २१

उनका अंतःकरण कृष्ण के प्रेम में इतना रमा हुआ है कि उनके बिना वे नहीं रह सकतीं :

मधुकर कहहु कहन जो पारौ ।
बलि नाहिन अपराध रावरौ , सकुचि साथ जनि पारौ ।
नहिं तुम ब्रज बसि नंदलाल को बालविनोद निहारौ ।।
नाहिन रास रसिक रस चाख्यौ , तातै डेल सौ डारौ ।।
तुलसी जौ न गए प्रीतम संग प्रान त्यागि तनु न्यारौ ।।
तौ सुनिवौ देखिबौ बहुत भव , कहा करम सौ चारौ ।।

..श्री कृष्ण गीतावली
पृष्ठ ३४

यद्यपि इसमें कृष्ण जीवन की व्यापक भावनाओं का समुचित विवेचन नहीं हुआ है परन्तु `मानस ` और `विनय पत्रिका ` के महाकवि की भावुकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

गीतावली : यह तुलसी का स्फुटगेय काव्य है । इसमें मानस के समान गेयता और एक सूत्रता नहीं है । महान भक्त होने पर भी काव्य के प्रारम्भ में किसी की वन्दना नहीं की गई है । यद्यपि इसमें भी मानस के समान ही सात कान्ड हैं पर उनकी विषमता एवं असम्बद्धता उसे प्रबंध-काव्य की कोटि में नहीं रहने दे सकती ।

इसमें हिन्दी-स्तोत्रों के सभी भेदों का प्रयोग नहीं हुआ है केवल स्तुति और प्रार्थना को ही महत्त्व दिया गया है । ऐसे प्रसंग अत्यंत ही मधुर हैं ।

आहत जटायु की प्रार्थना में अत्यंत ही भावुकता चित्रित की गई है :

तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं ।
जाको नाम मरत मुनि दुरलभ तुमहि कहाँ पुनि पैहौं ।।

..गीतावली

सीता जी को राम के दर्शन की उत्कृष्ट अभिलाषा है :

कबहुँ, कपि । राघव आवहिंगे ?
मेरे नयन चकोर प्रीति बस राका ससि मुख दिखरावहिंगे ।।

सुन्दरकाण्ड ..पद १०

इस प्रकार 'गीतावली' का माधुर्य और सरसता अत्यंत ही मनोहारी है । डा० रामचंद्र मिश्र ने इस विषय में लिखा है कि 'गीतावली में आदि से अंत तक मधुर और करुण स्थलों का ही समावेश है । फलस्वरूप तुलसी की शैली बड़ी ही कोमल और मधुर हो गई है । उनकी भक्ति भावना का तत्व यहाँ भी नहीं छूट सका है । ~~कृष्णगीतावली~~ श्रीकृष्ण गीतावली के समान गीतावली के पदों के अन्त में अधिकांशत: राम के प्रति आस्थापूर्ण भावनाओं का समर्पण मिलेगा । राम सम्बंधी तुलसी की भाव-धारा इस काव्य में भी अक्षुण्ण है ।[1]

---

१. डा० राम चन्द्र मिश्र हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास पृ० १६६

जटायु से भेंट , शबरी से भेंट , विभीषण की शरणागति आदि के प्रसंगों में अत्यंत ही भक्ति भावना विद्यमान है । राम का आश्वासन पाकर वह अत्यंत ही कृत कृत्य हो जाता है :

तादिन मजिवे जोग बियो ।
श्री रघुबीर समान आन को , पूरन कृपा हियो ।

..गीतावली ।

कवितावली .. इसमें सवैया , फूलना घनाक्षरी एवं छप्पय छंदों में राम की कथा का वर्णन किया गया है और मानस की भाँति ही इसमें भी सात काण्ड हैं परन्तु इसे प्रबंध काव्य नही कहा जा सकता । हाँ सुंदरकाण्ड और लंकाकाण्ड में प्रबंधात्मकता मिलती है । उत्तरकाण्ड को तो संकलन मात्र कहा जा सकता है । इसमें मानस की भाँति प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में मंगलाचरण भी नही है । यदि इसे समय समय पर तुलसीदास जी द्वारा रचित रचनाओं का संकलन कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी । आचार्य चन्द्रवली पांडेय का मत इस विषय मे सर्वथा उचित है । उन्होंने लिखा है कि 'कवितावली आदि से अंत तक कोई प्रबंध रचना नहीं । हाँ इसमें कुछ प्रबंध ~~अवश्य~~ अवश्य है 'सुंदरकाण्ड' कुछ प्रबंध के रूप में ही लिखा गया है और यही स्थिति लंका काण्ड' की भी है । शेष काण्डों में ,'उत्तरकाण्ड' की स्थिति सर्वथा विचित्र है । इसमें सभी कुछ जो दोहा और पद नहीं है स्फुट या प्रबंध के रूप में रचा गया है संकलित हो गया है । राम स्तोत्र , शिव स्तोत्र , हनुमान स्तोत्र कह सकते हैं ।[१] कवितावली में हिन्दी स्तोत्रों की निम्नलिखित विशेषतायें है :

---

१. आचार्य चन्द्रवली पांडेय ..तुलसीदास पृ०

स्तुति , वन्दना , नखशिख

१. स्तुति : इस प्रकार की रचनाओं में राम , शिव एवं हनुमान के स्तोत्र प्रमुख हैं। यद्यपि वे विरुदावली रूप में प्रतीत होते हैं परन्तु उनके मूल में स्तुति के ही तत्व ~~पूर्णरूपेण~~ पूर्णरूपेण विद्यमान है :

राम जय ताड़का सुबाहु मथन , मारीच मानहर ।
मुनि मख रच्छन दच्छ , सिलातारन करुनाकर ।।
नृपगन बल मद सहित संभु को दंड बिहंडन ।
जय कुठार धर दर्पदलन , दिनकर कुल मंडन ।
जय जनक नगर आनंद प्रद सुख सागर सुखमा भवन ।
कह 'तुलसिदास' सुर मुकुट मनि जय जय जय जानकि रमन ।।

लंकाकाण्ड ..११२

शिव : भस्म अंग , मर्दन अनंग ,संतत असंग , हर ।
सीस गंग , गिरिजा अर्धंग , भूषन भुजंगवर ।।
मुंड माल , बिधु बाल भाल , डमरू कपाल कर ।
बिबुध बृंद नव कुमुद चंद ,सुख कंद सूलधर ।
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्वसन विष भोजन भव भय हरन ।
कह 'तुलसिदास' सेवत सुलभ , सिव सिव सिव संकर सरन ।।

...१४९

2. वन्दना : इसके भी अनेक प्रसंग कवितावली में है जिनमें राम के भक्त रक्षक रूप का विश्लेषण किया गया है :

दानव देव अहीस महीस महामुनि तापस सिद्ध समाजी ।
जग जाचक , दानि दुतीय नहीं तुमहीं सबकी सबराखत बाजी ।
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिनु भूख न भाजी ।

राम गरीब नेवाज । भए हौ गरीब नेवाज गरीब नेवाजी ।।

उत्तरकाण्ड .. ६५

३. नखशिख : कवितावली के अनेक पदों में भगवान् राम के 'नखशिख' का भी वर्णन किया गया है । यद्यपि इसका विस्तार से विवेचन सातवें अध्याय में किया गया है परन्तु प्रमाण स्वरूप कुछ उद्धरण यहाँ भी दिए जा रहे हैं :

सुंदर बदन , सरसीरूह सुहाए नैन ,
मंजुल प्रसून माथ मुकुट जटनि के ।
अंसनि सरासन लसत , सुचि कर सर
तून कटि मुनिपट लटक पटनि के ।।
नारि सुकुमारि संग , जाके अंग उबटि कै ,
बिधि बिरचे बरूथ बिद्युत छटनि कै ।
विधि विरचे बरूथ विद्युत छटनि के ।
गोरे को बरन देखे सोनोन सलोनो लागे ,
साँवरे बिलोके गर्व घटत घटनि के ।।

अयोध्याकाण्ड .. १६

समीक्षा : तुलसीदास जी के समस्त स्तोत्र साहित्य में अपनी सभी पूर्ववर्ती परम्पराओं का समन्वित रूप दिखाई पड़ता है । उन्होंने नाना पुराण निगमागम सम्मत स्वीकार भी किया है । "अनेक पदों में वैदिक मंत्रों की अर्थच्छाया भी से लक्ष्य है । "[1] उनके प्रधान उपजीव्य पुराण ही हैं । विभिन्न प्रसंगों में विभिन्न पुराणों से उन्होंने जो शब्दार्थ ग्रहण किया है उसका दिग्दर्शन मात्र ही तुलसी दर्शन की पौराणिकता प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है ।[2] अनेक स्थलों पर पुरानों के श्लोकों के आशय तथा आलंकारिक

---

१. ऋ १०।६० , नि० दे० , रामा० ६।१४।१५
२. ऋ ६।२४।६ सा० १।७।६ ,नि० दे० रा० ४।१४।४

विधान का भी अनुसरण किया गया है ।[1] उनके स्तोत्र अनेकता में एकता का दर्शन कराते हैं । उन्होंने समस्त पंच देवोपासना की महत्ता स्वीकार करते हुए एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की है ।[2] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके साहित्य की समीक्षा करते हुए लिखा है 'तुलसीदास के ~~स्वच्छ~~ काव्यों में उनका निरीह भक्तरूप बहुत स्पष्ट हुआ है पर वे समाज सुधारक लोक नायक, कवि, पंडित और भविष्य सृष्टा भी थे । यह निर्णय करना कठिन है कि इनमें से उनका कौनसा रूप अधिक आकर्षक था और अधिक प्रभावशाली था । इन सब गुणों ने तुलसीदास में एक अपूर्व समता ला दी थी । इसी संतुलित प्रतिभा ने उत्तर भारत को वह महान साहित्य दिया जो दुनिया के इतिहास में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानता ।[3] इस प्रकार गोस्वामी जी को भक्ति काल का प्रमुख स्तोत्रकार कहा जा सकता है अपने स्तोत्रों से इन्होंने राम, कृष्ण एवं शिव की अभिन्नता को भी दूर कर दिया है । उन्हें सभी राममय प्रतीत होते हैं ।[4] निर्गुण सगुण, द्वैत-अद्वैत सभी का समन्वित रूप उनके राम में ~~स्थिर~~ स्थिर है । वे दास हैं और अपनी दास्य भावना के निष्काम रूप का प्रदर्शन कर राम के सन्निकट पहुँचना चाहते हैं । तुलसी का व्यक्तित्व उनके

पिछले पृष्ठ का

२. रा० १।१। सो० २ भवि० पु० ब्रह्मपर्व १।३

रा० १।१०।२,३ भो० पु० १।५।१०,११

रा० १।२३।२१ भो० पु० १।२।३२

रा० १।२३।२ भो० पु० ४।२१।३५

रा० ४।१५।३ भो० पु० १०।२०।८

---

१. रा० १।१ श्लोक ५. अ० रा० १।१।३४, २।५।२३
रा० १।१ श्लोक ६. अ० रा० ७।५।३७
रा० २।१ श्लोक ७. अ० रा० १।१।३

२. डा० उदयभानु सिंह तुलसीदर्शन मीमांसा पृ० ३६४

३. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य पृ० ५०

४. सीय राम मय सब जग जानी । करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी ।। ... मानस

ग्रंथों में बहुत स्पष्ट हुआ है । अत्यंत विनम्र भाव , सच्ची अनुभूति , के साथ अपने आराध्य पर अटूट विश्वास उनके व्यक्तित्व के प्रधान तत्व हैं । आराध्य की ऐसी एक निष्ठा , भक्ति , ऐसा अनन्य विश्वास और इतनी अखंड आस्था संसार के इतिहास में दुर्लभ है ।[1] उनके स्तोत्र उनकी भक्ति भावना के उत्कृष्ट प्रमाण हैं । भक्ति काल का कोई भी स्तोत्रकार उनकी समता नहीं कर सकता ।

<u>सहजराम</u> । रघुवंश दीपक ।

भक्तिकालीन स्तोत्रकारों में सहज राम जी का भी एक विशेष स्थान है । उन्होंने `रामचरित मानस की भांति अपने रघुवंश दीपक की रचना की थी । उनकी रचनाओं में भी भक्ति कालीन सभी भावनाएं प्राप्त होती हैं । तुलसी की भांति ही इन्होंने ने भी समस्त देवी देवताओं , तीर्थ स्थलों आदि को अपनी स्तुति यों में स्थान दिया हैं । इसके अनेक स्थल स्तोत्रात्मक भावनाओं से परिपूर्ण है । यद्यपि इसका रचनाकाल ~~इसि~~ रीतकाल में हुआ है परन्तु राम काव्य के कवि होने के नाते इसका विवेचन राम भक्ति शाखा के साथ ही किया जा रहा हैं । इसमें भी मानस की ही भांति सात काण्ड हैं । `रघुवंश दीपक` में हिन्दी स्तोत्रों की निम्नलिखित शैलियां प्राप्त होती है :

१. मंगलाचरण २.वन्दना ३. स्तुति ४. प्रार्थना ५.विसद

<u>मंगलाचरण</u> : सहजराम जी ने भी अपने ग्रंथ में मानस की भांति ही मंगलाचरण किया है । लंकाकाण्ड की अपेक्षा प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में गुरू , गणेश , राम उमा आदि की वंदना स्वरूप मंगलाचरण किए गए हैं । उन मंगलाचरणों की काव्य कुशलता , सरसता और कलात्मकता उच्च कोटि की है । इसके कुछ उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं :

१. है एव लम्बोदर विनायक , सिद्धि दायक सुख प्रदा ।
इक दंत देती वदन बंदत बृंद बृंदारक सदा ।।
सुख कंद गिरिजा नंद मैं मति मंद तुम करूणा धनी ।
मोहिं देहु बुद्धि विशाल वराहु राम कल कीरति धनी ।।
बालकाण्ड

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ..हिन्दी साहित्य पृ० २२४ . २५

२. विघ्न हरन है रव वदत वेद विद ब्रह्म अज ।।
ध्यावत अमर कंदव वन्दौ चरण सरोज रज ।।२।।

... अयोध्याकाण्ड :

३. उमा रमा ब्रह्मायनी बानी विमुन समेत ।
वन्दौं सबके पद कमल जो सब कहँ सुखदेत ।।१।।

.. आरण्यकाण्ड

४. गजाननं चारू विशाल नेत्रं मौंजी धरं मूषक वाहरुंच ।
चतुर भुजं चञ्चल कर्णधुमं गणाधिपं गौरि सुतं नमामि ।

..किष्किंधाकाण्ड

५. सहज राम हनुमान कपि सुमिरि जानुकी राम ।
जो प्रीतम सब जक के श्री सुखमा के धाम ।।

.. सुन्दरकाण्ड

६. राम तुम्हारे रूप ते नाम सकल गुण धाम ।
तन धरि तारेउ अवध तुम त्रिभुवन पारेउ नाम ।।

.. उत्तरकाण्ड

परन्तु जो भक्ति का स्वरूप तुलसी में है वह सहज राम में नहीं दिखाई पड़ता । तुलसी के मंगलाचरणों में संस्कृत की शैली का अनुसरण किया गया है ।

वन्दना : मानसकार की भाँति सहजराम जी ने भी अपने आराध्य के अतिरिक्त विभिन्न देवी देवताओं की भी वन्दनायें की हैं । संसार के असंतो की ओर भी उन्होंने तुलसी की भाँति ही स्थान दिया है । बालकाण्ड में भी इन वन्दनाओं के अनेक उदाहरण है । बालकाण्ड में कवि ने राम की वन्दना करते हुए उनमें अपनी अपार श्रद्धा एवं स्नेह का प्रदर्शन किया है :

वरणौं वरण मनोहर दोऊ अभिमत दानि जान सब कोऊ ।
मुनि मन मानस मिथुन मराला । संत हृदय खग पन्न विशाला ।

श्रुति लोचन मोचन भव शूला । भवम् पार चारू दोउ कूला ।
सैत हैत नागर नल-वाला । भव रूज मानु कुमार सुशीला ।
हरिजन हरण काय तरू जामा । दोउ वर परस परम अभिरामा ।।

...रघुवंशदीपक:

राम की अनंतता का अनुभव कर वह उसी में लीन रहना चाहता है । सगुण रूप होने पर भी उसकी शक्ति ~~का~~ अपार है । वह अजन्मा है ।[1] रघुनाथ की कृपा के समान अन्य की कृपा नहीं । राम तो भक्तों के रक्षक हैं । उसे राम को छोड़कर अन्य किसी की भक्ति में आनंद नहीं आता है । इसलिए वह उनकी वंदना करता है ।[2] त्रिदेवों में भी उसी की सत्ता का आभास होता है ।[3] वह राम के साथ संतों के भी चरणों की वन्दना करता है । उन्हीं के द्वारा सद्-असद के विवेक का ज्ञान होता है ।[4]

वंदौं संत चरण सर सीरूह । दानि मनोरथ फल जल धीरूह ।
सद् सद् विगत हैत मति माखी । अभिमत दानि साधु सुर साखी ।।

..रघुवंश दीपक:

स्तुति : मानस[5] की भाँति ही रघुवंश दीपक में भी समस्त देवताओं द्वारा क्षीरशायी भगवान् विष्णु की स्तुति कर रविणादि राक्षसों से मुक्ति की कामना की गई है ।[6] मानस ~~म~~ की भाँति ही इसमें भी कौशल्या द्वारा ~~म~~ राम की स्तुति की गई ~~है~~ है ।[7] केवट राम को पार तो उतारना चाहता है परंतु उसके हृदय में भी स्वयं की मुक्ति की कामना है । इसीलिए वह स्तुति करता है ।[8]

---

१. रघुंशदीपक पृ० ७
२. वही पृ० ८
३. वही पृ० १०
४. वही
५. मानस ..बालकाण्ड
६. रघु० दी० पृ० ४५
७. र० दी० पृ० ६८
८. र० दी० पृ० २५८

वन-गमन के समय सीता जी अत्यंत ही दुखी होकर रामचन्द्र जी की स्तुति करती हैं और साथ में ले जाने की प्रार्थना करती हैं :

राम राम घनश्याम शरीरा । बिनु देखे तन मिटै न पीरा ।
शोभा सदन बदन बिधु देखी । मिटहिं ताप परिताप विशेखी ।
विधि हरिहर दिग्पति पद पावन । चहौं न सम्पति सुमति सुहावन ।।
सो पद पदुम भक्ति भव मोचन । करिहौ सुफल विलोक विलोचन ।।
.. रघुवंशदीपक पृ० २६७.

सहजराम ने सूर्यादि की भी स्तुतियाँ लिखी हैं । भगवान भास्कर के प्रकाश से समस्त विश्व को एक नवीन चेतना प्राप्त होती है ।[१]

अत्रि अपने आश्रम में भगवान् राम को देखकर उनकी स्तुति करते हैं । मानव जीवन उसी के स्नेह से शान्ति प्राप्त करता है । विषय वासना के विकार उसी के अनुराग से नष्ट हो जाते हैं ।[२] सुग्रीव भी राम को देखकर उनकी विश्व व्यापकता का विवेचन करता हुआ स्तुति करता है ।[३]

देवताओं द्वारा रामकी निष्काम भावना की स्तुति उनके अन्तस्तल की विशुद्धता स्पष्ट करती है । रावण का विनाश संसार के हित के लिए हुआ था । एक ओर यदि राम को सीता की प्राप्ति हुई थी तो दूसरी ओर त्रिलोक का रक्षण भी हुआ था ।[४]

जिस प्रकार मानस मे ब्रह्म द्वारा राम की स्तुति की गई है उसी प्रकार रघुवंशदीपक में ब्रह्मा जी ने राम की स्तुति की है । उनकी स्तुति में राम के यथार्थ महान स्वरूप को वर्णन किया गया है । ~~ममममम~~ भगवान भक्ति से वश में होते हैं, योग जप से नहीं । योग जप केवल आडम्बर मात्र है ।[५] वशिष्ठ की स्तुति में भी उनके हृदय की भक्ति और भावुकता का सरस चित्रण हुआ है ।[६]

प्रार्थना : इसके माध्यम से भक्त अपनी कामना पूर्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा करता है ।[७] कथा के बीच में आने वाले प्रसंगों में प्रहलाद

---

१. रघुवंशदीपक पृ० ३१०

इत्यादि की प्रार्थनाओं में अत्यंत ही सहृदयता और दया की कामना की गई है। मुक्ति प्राप्त होने पर अहिल्या भगवान राम की ही शरण चाहती है। उसके अन्त:करण में राम का निवास होना चाहिए।[1] सीता जी राम को पाने के लिए पार्वती की प्रार्थना करती हैं।[2] धनुष भंग के लिए भी सीता जी शंकर आदि देवताओं को प्रार्थना करती हैं।[3] राम को राज्य मिलना चाहिए इसके लिए वह समस्त देवताओं की शरण में उपस्थित होती है। देवताओं की कृपा से उसकी आकांक्षा की पूर्ति अवश्य हो जायगी।[4] किष्किंधा कांड में कवि ने शंकर जी से अपनी मुक्ति की प्रार्थना की है।[5] बालि मृत्यु के पश्चात् राम की शरण में रहने की ही प्रार्थना करता है।[6]

विरुद : इसमें कवि अपने आराध्य के शौर्य आदि का ओजस्वी भाषा में गान करता है। पर मूल में उसकी स्तोत्रात्मक भावना विद्यमान रहती है। स्वयं प्रभा ने भगवान् राम के अद्भुत रूप का गुण गान किया और स्वर्ग चली गई।[7] वेदों द्वारा की गई स्तुति विरुद के अन्तर्गत आती है। मानस में भी राम का विरुद गान वेदों द्वारा किया गया है। परन्तु मानस की सी यथार्थ भक्ति भावना का इसमें अभाव है। वेद स्तुति करते हुए कहते हैं :

जैति रघुवंश मणि अवतंश संसार दुख दवन श्री रवन करुणा निधान।
मोहि मद कोह कामादि करि केशरी भजत बृहादि सुर वृषभं यानं।
जैति रघुवीर रनधीर तुणीर कटि पीत पट लसत कर धनुष बानं।
मदन शत कोटि छवि कोटि शारदा रवन बदन सुख सदन सुखमा निधानं।

पिछले पृष्ठ का :

२.	रघुवंशदीपक	पृ० ३४८	३.	रघुवंशदीपक	पृ० ४१८
४.	वही	पृ० ६०५	५.	वही	पृ० ६३६ ..३७
६.	वही	पृ० ६६६	७.	वही	पृ० ५

१.	रघुवंशदीपक	पृ० ११७	२.	रघुवंशदीपक	पृ० १२७..१२८
३.	वही	पृ० १३६	४.	वही	पृ० १३६
५.	वही	पृ० २१७	६.	वही	पृ० ४१५
७.	वही	पृ० ४३०		वही	पृ० ४४७

जैति भगवंत श्रीकंत कौवर भव भ्रमत जगजीव नहिं पार पाया ।
दिशा भ्रम भयो भवदीस माया-निशा परतनहीं सूझि तमतोम छाया ।
जैति रघुनंद सुख कंद कंदा घहं दलन दश शीश भुज बीस भारी ।
हरण महि भार संसार संताप तुम राम मत्स्यादि अवतार धारी ।।

..उत्तरकाण्ड :

देवता भी भगवान राम का विसद गान करते हैं :

जय हंस कुल अवतंश हंस मन मानस वसौ ।
धरि भूप रूप अनूप भूपर भानुकुल भूषण लसौ ।
जय योग ज्ञान विराग तीरथ करत तप तन ताप के ।
तुम प्रेम के वश होत जिमि बालक बताशा पाइकै ।
प्रभु प्रेम लखि प्रहलाद का भय प्रगट खंभ विदारिकै ।।

.. उत्तरकाण्ड :

उत्तरकाण्ड में कौशल्या द्वारा की गई स्तुति भी विरूद गान ही है :

जय कमला पति जय गरूड़ासन । धरेउ मनुज तन दनुज विनासन ।
जग पितु मातु राम सिय होहू । तिनहि कहत हम पूत पतोहू ।।

..उत्तरकाण्ड :

इस प्रकार रघुवंश दीपक सहज राम की भक्ति भावना उत्तम उदाहरण कही जा सकती है । उनकी सी दार्शनिकता एवं भक्ति प्रत्येक का भगवान् रूप के सन्निकट सरलता से पहुँचा सकती है । परन्तु कलाकी दृष्टि से `रघुवंश दीपक` उतना महत्वपूर्ण और उच्च कोटि का ग्रंथ नही है । तुलसी की काव्य-कला की समता हिन्दी साहित्य का कोई कवि नहीं कर सकता । रघुवंश दीपक की भाषा अवधी है । उसमें दोहा , चौपाई , श्याम धनाक्षरी आदि छंदों का प्रयोग किया गया है । मानस की सी ओजस्विता , चारूता कलात्मकता और मधुरता `रघुवंशदीपक` में नहीं प्राप्त होती ।

केशवदास : रामभक्ति परम्परा ~~में~~ के स्तोत्रकारों ~~के~~ में केशवदास जी का भी

स्थान है । उन्होंने अपने अनेक ग्रंथों में मंगलाचरण , वंदना , स्तुति विसेद आदि विभिन्न रूपों को अपनाया है । परन्तु रामचंद्रिका में भगवान् राम से सम्बंधित अनेक स्तोत्र हैं । यद्यपि उनकी भक्ति भावना तुलसी की भाँति न थी परन्तु ~~स्तोत्रों~~ रामचंद्रिका के स्तोत्रों से उनके हृदय का भक्ति पक्ष स्पष्ट हो जाता है । उनके स्तोत्र गणेश ,सरस्वती , राम , शिव , आदि देवताओं से सम्बधित हैं । कुछ स्तोत्रों में उनकी समन्वयात्मक भावना का अनुभव किया जा सकता है क्योंकि इस प्रकार के स्तोत्रों में उन्होंने परमेश्वर , हरि , गुरू आदि का गुण गान एक ही साथ किया है ।

उनके स्तोत्रों की निम्नलिखित कोटियाँ :

मंगलाचरण , स्तुति , विसद

मंगलाचरण : काव्यग्रंथों के पूर्व में केशवदास जी ने गणेश , सरस्वती , श्रीकृष्ण आदि देवताओं का मंगल गान करके अपने ग्रंथों की सफलता की कामना की है ।[1] उनकी विज्ञान गीता के प्रारम्भ में भी मंगलाचरण द्वारा निर्गुण ब्रह्म का भी वंदन किया गया है । उनके इस प्रकार के पदों में उनकी समन्वयात्मक भावना के दर्शन होते है । निर्गुण एवं सगुण सभी का विवेचन उनके स्तोत्रों में प्राप्त होता है ।[2]

बन्दना : केशव द्वारा की गई वन्दनाओं मे उनकी परम्परागत मंगलाचरण के ही तत्वविद्यमान है । प्राय: कवि गण ग्रंथारम्भ में मंगलाचरण रूप में वन्दना करते हुए ग्रंथ समाप्ति की कामना करते हैं । 'रसिक-प्रिया' एवं 'कवि-प्रिया' के अन्तर्गत आने वाली प्रारम्भ की वन्दनायें इसी कोटि की हैं ।[3]

---

१. दे० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ..केशव ग्रन्थावली छ० १ .रतनावली
   दे० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ..केशव ग्रन्थावली १ ,२,३
   राम चन्द्रिका

२. दे० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ..केशव ग्रंथावली ।विज्ञान गीता ।
   छंद १ ,२

३. दे० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ..केशव ग्रंथावली रसिक प्रिया ,१ ,२ छंद
   कविप्रिया छंद १ ,३
   वीरचरित छंद १

स्तुति : राम चंद्रिका के अनेक स्थलों पर स्तुतियां आई हैं । विभीषण द्वारा रावण से त्रासित होने पर राम की शरण में आकर की गई स्तुति दास्य भाव की रचना कही जा सकती है । भगवान् राम शरणागत रक्षक हैं इसीलिए शरण में आकर वह स्तुति कर रहा है :

'केसव' आपु सदा सह्यो दुख्ख पैदासनि देखि सकै न दुखारि ।
जाको भयो जेहि भाँति जहां दुख त्यों ही तहां तेहि भाँति सँभारे
मेरि यै बार अवार कहा कबहूं नहि काहू के दोष विचारे ।
बूड़त हौं महामोह समुद्र में राखत काहेन न राखन हारे ।।[1.]
ब्रह्मा द्वारा भी भगवान् राम की स्तुति की गई है ।[2.]

वंदना : कुछ वन्दनायें यथार्थ गुण कथन से सम्बंधित है । 'राम चंद्रिका' में राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण आदि द्वारा त्रिवेणी की वंदना इसी कोटि की है ।[3.]

विरुद : इसमें गुण कथन के साथ साथ वीर अंश का भी प्रभाव रहता है । कवि एक प्रकार से यशोगाथा कहता सा प्रतीत होता है । राम चंद्रिका में ब्रह्मा,[4.] वायु[5.] ऋषि,[6.] किन्नर[7.] देवगण[8.] केशव द्वारा अनेक स्थलों पर भगवान् राम का विरुद-गान हुआ है ।

इस प्रकार केसवदास जी ने अपने समस्त ग्रंथों मे हिन्दी स्तोत्र साहित्य के विभिन्न रूपों का प्रयोग करके इस परम्परा में योगदान किया है । रीति परम्परा के आचार्य होने के नाते उनका उद्देश्य भक्ति-भावना के स्थान पर केवल पांडित्य प्रदर्शन ही कहा जाता है । भक्तों की सी भक्ति भावना एवं तन्मयता उनमें नहीं है ।

३७

१. केशव ग्रन्थावली पृ० ३११. २. केशव ग्रन्थावली छंद १५, १६,..२३ पृ०३३६
३. वही पृ० ३६७.३८ ४. वही पृ० ~~३६४~~ ३६५
५. वही पृ० ३६६ ६. वही पृ० ३६६
७. वही पृ० ३६६. ६८ ८. वही पृ० ३६६
९. वही पृ० ३६६

रहीम :

भक्तिकालीन कवियों में `रहीम ` का भी स्थान है । इनके दोहों में सांसारिक व्यवहारिकता के अतिरिक्त गम्भीर तत्व संवेदना भी है । इनकी स्तोत्रात्मक रचनाएं भी बड़ी सरस हैं और उनमें भक्ति की अमिट छाप दिखाई पड़ती है । अपनी गुरू , गणेश एवं शंकर विषयक वन्दनाओं में उन्होंने भक्ति-भावना का सुन्दर प्रदर्शन किया है :

गुरू-वंदना :

पुनि पुनि बन्दहु गुरू के , पद जल जात ।
जिहि प्रताप तैं मनके , तिमिर विलात ।।

गणेश-वंदना

बन्दहुं विघन बिनासन , ऋधि-सिधि ईस ।
निर्मल बुद्धि प्रकासन , सिसु-ससि-सीस ।।

शंकर-वंदना

ध्यावहुं सोच विमोचन , गिरजा ईस ।
नागर भरन त्रिलोचन , सुर सरि सीस ।।

इन वन्दनाओं में उनके हृदय की सच्ची अनुभूति और आस्था का यथार्थ रूप छिपा हुआ है । आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने लिखा है .. ` उनमें मार्मिकता है , उनके भीतर से एक सच्चा हृदय झांक रहा है । जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में होगी वही जनता का प्यारा कवि होगा । `[१]

उनकी रचनाओं में `सुमिरिनी ` का भी प्रयोग हुआ है । ऐसी रचनाओं में कवि ने श्रीकृष्ण के मनोहारी रूप का स्मरण किया है :

---

१. आचार्य राम चंद्र शुक्ल .. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २१७

कमलदल नैन की उनमानि ।
बिसरति नाहिं , सखी । मो मन तें मंद मंद मु मुसकानि ।
बसुधा की बसकरी मधुरता , सुधायगी बतरानि ।।
मढ़ी रहै चित उर बिसाल की मुकुता हल थहरानि ।
नृत्य समय पीताम्बर हू की फहर फहर फहरानि ।।
अनुदिन श्री वृंदावन ब्रजतें आवन आवन जाति ।
अब रहीम चित ते नटरति है सकल स्याम की बानि ।।

उपर्युक्त स्तोत्रात्मक रचना में रहीम कवि का सच्चा भक्त हृदय दिखाई पड़ता है । यद्यपि इसमें एक सखी से वार्तालाप करते समय रूप वर्णन हुआ है परन्तु स्मरणात्मक भावना के कारण इसे सुमिरनी के अन्तर्गत रखा जा सकता है । रहीम कवि की स्तोत्रात्मक रचनाएं प्रसंगानुसार होने पर भी भक्ति-प्रधान हैं ।

सेनापति :

भक्तिकालीन कवियों में सेनापति की श्लेषात्मक रचनाएं बड़ी ही सरस और भावात्मक हैं । इनमें कला पक्ष के साथ साथ भक्ति पक्ष की भी प्रबलता है । यदि एक ओर भावुकता का प्रदर्शन है तो दूसरी उनका चमत्कार भी महत्व पूर्ण है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार .. " भाषा पर ऐसा अच्छा अधिकार कम कवियों का देखा जाता है । इनकी भाषामें बहुत कुछ माधुर्य ब्रजभाषा का ही है ,संस्कृत पदावली पर अवलंबित नहीं । [१] इनके उपास्य देव राम `राम ` ही हैं । अनेक स्थलों पर इन्होंने सीताराम का स्मरण किया है परन्तु `राधाकृष्ण ` की मधुरमूर्ति मे भुला न सके हैं । डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है .. "सेनापति राम भक्त कवि थे । चौथी तरंग `रामायण वर्णन ` तथा पांचवी तरंग `राम-रसायन-वर्णन ` में उन्होंने स्पष्ट ही रघुनाथ जी की अघ खंडन खड़ाऊं [२] की वंदना की है तथा

१. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ..हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २२५
२. कवित्त रत्नाकर छंद संख्या १

पूर्ण पुरूष बताया है । परंतु श्रृंगार रस वर्णन के अन्तर्गत नायक और नायिका का वर्णन करते समय उन्हें कृष्ण और राधिका की याद आयी थी ।[१] उनकी स्तोत्रात्मक रचनाओं के निम्नलिखित उदाहरण महत्त्वपूर्ण हैं :

काढ़त निषंग तैं न साधत सरा सन मैं , खैंचत , चलावत न बानयौ
विपत है ।
स्त्रवन मैं हाथ , कुण्डलाकृति धनुष बीच , सुन्दर बदन इक चक्र लेखिमत है ।।
सैनापति कोप ओप ऐन हैं अरून नैन , संवर दलन मैन तैं बिसेखियत हैं ।
रह्यौ नत है के अंग ऊपर को संगर मैं , चित्र कैसो लिख्यौ राजाराम
देखियत है ।

उपर्युक्त मैं युद्ध करते समय राम की मुद्राओं का चित्र खींचा गया है । सैनापति ने राम के अतिरिक्त आशुतोष शिव की भी वन्दना की है :

सोहतोति उतंग उत्तम मग ,ससि संग संग ,गौरी अरधंग ,जो अनंग प्रतिकूल है ।
देवन कौं मूल ,सैनापति अनुकूल ,कटिचाम साइल कौं ,सदाकर त्रिसूल है ।
कहा भटकत । भटकत क्यौं न तासौं मन । जातैं आठ सिद्धि नव निद्धि
रिद्धि तूल है ।
लेत ही चढ़ाइबे कौं जाके एक बेल पात , चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल
मूल है ।।

कवि ने सुंदर युक्तियों से गंगा की भी वंदना की है :

काल तैं कराल काल कूट कंठ मांझ लसै ,व्याल उर माल , आगि भाल
सबही समैं ।
व्याधि के अंग ऐसे व्यापि रह्यौ आधौ अंग ,रह्यौ आधो अंग सोसिवा
की वक्सीस मैं ।।
ऐसे उपचार लैन लागती बलात वार पैय तीन ताकी तिल एकौ कहुं
ईस मैं ।।
सैनापति जिय जलि सुधा तैं सहसबानी : जो पै गंगा रानी कौ न पानी
होतो सीस पै ।।

---

१. डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ..रीति कालीन कविता और श्रृंगार रस की विवेचन पृ० ३१८

सेनापति ने अपनी विभिन्न प्रार्थनाओं में संसार की अनित्यता से विक्षुब्ध होकर भगवान के लोकोपकारी रूप की आराधना की है। ऐसे समय वह सर्वत्र भगवान् की करूणा का प्रसार देखता है। नृसिंह की प्रार्थना इस प्रकार के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती है :

अरि करि आंकुस विछरयौ हरिना कुस है, दास कौ सदा कुसल, देत जे हरष है।
कुलिस करेरे, तोरा तमक तरेरे, दुख दलत दरेरे के हरत कलमष हैं।।
सेनापति नर होत ताही तैं निडर उर तातैं तुनकर वर करना वरष हैं।
अति अनि और चंद कला से उजारे तेई मेरे रखवारे नरसिंह जू के नख है।

~~अति-अनि~~

इस प्रकार सेनापति की विभिन्न वन्दनाओं और प्रार्थनाओं में उनकी तन्मयता के दर्शन किए जा सकते हैं। वे राम के अनन्य भक्त थे किंतु कृष्ण और शिव से भी उन्होंने स्नेह प्रकट किया है और अपने आराध्य के जिस रूप के प्रति उन्होंने अपने भाव अर्पित किये हैं उसमें उनकी अभिव्यक्ति का सफल प्रदर्शन हुआ है।

रसिक सम्प्रदाय के कुछ कवि :

डा० भगवती प्रसाद सिंह ने रसिक सम्प्रदय के विषय में लिखा है कि 'आचार्य अग्रदास को इस सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इसका तात्पर्य सम्भवत: यही है कि सर्व प्रथम उन्होंने ही इन विखरे अंशों को सुसज्जित करके एक सुसंगत सिद्धान्त रूप प्रदान किया था।'

... राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय
भूमिका पृ० ५

रसिक सम्प्रदाय की विशेषतताएं :

इस प्रकार की उपासना में 'माधुर्य रति, उपास्य से व्यक्तिगत सम्बंध घनिष्ठता, मर्यादा रक्षा का भाव, हनुमान का आचार्यत्व, तुलसीदास में एकान्त श्रद्धा, रसिक तीर्थों में आस्था' आदि विशेषताएं हैं। इस प्रकार की

परम्परा आज तक चली आ रही है । इसके कुछ कवियों के विषय में नीचे दिया जा रहा है ।

बालानंद : रसिक सम्प्रदाय के प्रमुख कवियों में इनका स्थान है । इनकी स्फुट कविताएँ ही प्राप्त होती हैं जिनमें उन्होंने युगल मूर्ति ऐश्वर्य और माधुर्य की ही उपासना की है :

सुमिरौं मन राम सच्चिदानंद ।
जो सुमिरै जय ताप हरतु है परतन जय के ~~छन्न~~ फंद ।
ऋषि मख राखि निशाचर मारे अभय किए मुनि वृंद ।
पद रज परसि सिला भइ सुन्दरि धाम उतने गयन्द ।
जनक स्वयम्बर परवन कीन्हों तोड़ो धनुष प्रचंड ।
सिया जो विवाहि अवध हरि आये घर घर भयो अनंद ।
मात कौशल्या करत आरती निरखत सुख के कंद ।
जय जयकार भये सुरपुर में गावत बालानंद ।।

.. भजनरत्नावली ।

छत्रसाल : महाराज छत्रशाल भी इस उपासना के भक्त थे । वीरता और भक्ति का समन्वय और भी मधुर हो गया है । उनकी रचनाओं में हनुमान पचीसी, राधाकृष्ण पचीसी, कृष्णावतार के कवित्त आदि प्रसिद्ध हैं । युगल रूप की मनोहारी छवि ही वे अपने हृदय में बसाना चाहते हैं :

मेरे नैन जुगल चकोर राम राका ससि, काय मन बचन बिलोकि सुख पावैंगे ।
अंग अंग अमित अनंग छवि देखि देखि, द्वन्द दुख भंजि भूरि आनंद बढ़ावैंगे ।
'छत्रसाल' मानस नदीस बीस बिसे आजु अमिय अमंद चारु चखनि चखावैंगे ।
मोह भ्रम जनित विदारि तम तोम अब सीतावर चन्द उर मंदिर बसावैंगे ।

.. छत्रशाल ग्रंथावली :

प्रेमसखी : रसिक सम्प्रदाय के कवियों में इनका भी स्थान है। इनका 'सीताराम का नखशिख' नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है। युगल मूर्ति के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हुए उन्होंने लिखा है :

> कामद तौ न उठे करते कर लेखनी के पित कौन उठावै।
> लालन दृष्टि परी जब तौ प्रिय नाम सुने असुँवा भरि लावै।
> 'प्रेमसखी' मधु की मखियाँ मन जाय फस्यो अब हाथ न आवै।
> मूरति श्री रघुनंदन की लिखते न बनै लखते बनि आवै।।

..महात्मा हनुमान शरण के पद
से उद्धृत :

कृपानिवास : इनके लिखे अनेक ग्रंथ हैं जिनमें गुरू महिमा युगल माधुरी प्रकाश, जानकी सहस्त्र नाम राम सहस्त्रनाम, हनुमत पचीसी, प्रार्थना शतक आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। निम्नलिखित उदाहरण उनकी इस भावना का स्पष्ट करण करता है :

> मंगल मूरति अवध बिहारी सीता पति की मैं बलिहारी।
> मंगल सरजू अवधपुरी शुभ मंगल सखी सबै नर नारी।
> मंगल नृप दशरथ सब नारी मंगल कौशल्या महतारी।
> मंगल हनुमत आनंदकारी कृपा निवास मंगल अधिकारी।।

.. कृपा निवास पदावली :

कृष्ण भक्ति काव्य में स्तोत्र :

राम काव्य के ही समानान्तर कृष्ण काव्य का भी विकास हो रहा था। जिसके प्रसार में विभिन्न आचार्य एवं कवि योगदान दे रहे थे। इन आचार्यों ने 'वैष्णव भक्ति, और अपने तात्त्विक सिद्धान्त वाद की स्थापना के साथ शंकराचार्य के मायावाद तथा विवर्तवाद का भी खंडन किया है।'[१]

---

१. डा० दीनदयालु गुप्त .. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय पृ० ४०

कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण के ब्रह्मत्व को स्वीकार किया गया है और उस पर माध्व , निम्बार्क एवं रूद्र सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का प्रभाव भी पड़ा है । भक्तों ने कृष्ण के लीलाधारी रूप के प्रति अधिक अनुरक्ति दिखाकर उनके अनुग्रह को ही अपनी साधना का मूल उद्देश्य माना है । निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा देवी की उपासना सर्वोपरि है अत: राधाकृष्ण की लीला एवं युगल उपासना के भी स्तोत्र लिखे गए यहां तक ही नहीं अपितु राधा के अनुग्रह को ही कृष्ण प्राप्ति का मूलाधार समझा गया है । निम्बार्काचार्य एवं मध्वाचार्य ने धार्मिक क्षेत्र में कृष्णभक्ति का प्रचार अपने अपने साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के अनुसार किया था । वल्लभाचार्य के प्रादुर्भाव से और उनके पुष्टिमार्ग के प्रवर्तन से कृष्ण भक्ति का मार्ग और भी प्रशस्त हो गया ।

इस प्रकार निम्नलिखित सम्प्रदाय कृष्ण भक्ति काव्य मे प्रादुर्भूत हुए :

चैतन्य-सम्प्रदाय
वल्लभ-सम्प्रदाय
राधावल्लभ-सम्प्रदाय
हरिदासी-सम्प्रदाय

चैतन्य सम्प्रदाय का स्तोत्र-साहित्य

चैतन्य सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के मधुर भाव की उपासना की जाती है । इन पर गौड़ीय वैष्णवों के अचिन्त्य भेदाभेद के सिद्धान्त का प्रभाव है । ये आचार्य प्राचीन रस सिद्धान्त को जड़ोन्मुख और अपने सिद्धान्त को चिन्मुख कहते हैं । भारतवर्ष में इस मधुर भाव की उपासना की परम्परा अति प्राचीन मानी गई है । शैवों का अद्वैतवाद और उनका सामरस्यवाला रहस्य सम्प्रदाय वैष्णवों का माधुर्य भाव और उनके प्रेम रहस्य तथा कामकला की सौन्दर्य उपासना

आदि का उद्गम , वेदों और उपनिषदों के ऋषियों की वे साधना प्रणालियां है जिनका उन्होंने समय समय पर अपने संघों में प्रचार किया था ।[1] जीव गोस्वामी के `षट् संदर्भ` में इसकी वेद मूलकता का यथार्थ स्पष्टीकरण हुआ है । विद्वानों का मत है कि इसके विकास में वेद और आगमों का विशेष स्थान रहा है । साहित्य शास्त्र के ग्रंथों में भक्ति को भाव माना जाता है । जिसे भक्तों और वैष्णवों ने `रस` कहा है । समस्त वैष्णव सम्प्रदाय इस मत में विश्वास रखते हैं कि जीवात्मा कभी भी परमात्मा में लीन नहीं होती अत: `उनकी साधना प्रक्रिया में ढलकर वेदों का अद्वैत मूलक आनंदवाद ``मधुर` भाव की उपासना के रूप में बदल गया है । मधुर भाव की उपासना में मिलन साध्य है तो विरह उसका साधन । मिलन के आनंद का पूर्ण अनुभव बिना विरह की तीव्रतम अनुभूति के नहीं किया जा सकता ।`[2] वैष्णव भक्त पूर्णानंद को ही विरह स्त्रोत मानते हैं । उसका चरम उद्देश्य विरह के स्थान पर महामान की प्राप्ति होता है । रुद्र यामल के इस उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है :

लोकातीत मजाण्ड कोटि गमपि त्रैकालिकं यत्सुखं ,
दु:खं चेति पृथग्य दिस्फुट मुभे ते गच्छत: कूटताम् ।
नैवाभास तुलां शिवे । तदपि तत्कूटद्वयं राधिका
प्रेमोघत् सुख दु:खा सिंधु भवयो विदेत विन्दोरपि ।

चैतन्य सम्प्रदाय में सुखद आनंद रूपा होने के कारण भक्तों का विरह भी माधुर्य पूर्ण रहता है । वैष्णव आचार्य गोपिकाओं को ब्रज मे ही इसका पूर्ण आस्वादक मानते है । यह रसमार्ग ही प्रेम की प्राप्ति का अमूल्य साधन है । मर्यादा मार्ग में ऐश्वर्य भाव की प्रधानता होती है जिसके कारण हृदयगत भाव का महत्त्व न्यून पड़ जाता है परन्तु रसमार्ग द्वारा

---

१. श्री जय शंकर प्रसाद ..काव्यकला तथा अन्य निबंध पृ० ४६ , ४७ , ६८
२. गोविंद हुलास नाटक की भूमिका पृ० ८ कुं० च० चन्द्रप्रकाश सिंह

प्राप्त प्रेम में अतीव माधुर्य विद्यमान रहता है।

भक्तों ने पाँच रस माने हैं जिसमें `मधुर रस` का महत्त्वपूर्ण स्थान है। `चैतन्य सम्प्रदाय के एक कवि ने लिखा है :

पूर्व पूर्व रस कौ जु गुन , पर पर रस मधि होय ।
एक दीप यौं पाँच लौं ~~क्र~~ क्रमकरि बाढै सोय ।।
गुणाधिका करि बढ़तु है प्रति रस स्वाद उजास ।
सांतादिक रस गुनिन कौ कान्तभाव मधिवास ।।
जैसे आकासादि गुण पर पर भूतहि होय ।
दोय तीनि यहि क्रम जु बढि पाँच धरनि महि सोय ।।
परि पूरण श्रीकृष्ण की प्राप्ति रही रस होय ।
रही प्रेम के कृष्ण बसक हैं भागवत सोय ।।

अर्थात् जिस प्रकार आकाश जल , अग्नि , क्षिति , वायु आदि पाँच भूतों के गुणों का विकास एक दूसरे से उत्तरोत्तर होता जाता है उसी प्रकार शान्ति का रति दास्य में शान्त और दास्य दोनों की रति वात्सल्य में और शान्त , दयम , साक तथा वात्सल्य इन चारों की रति मधुर में सहज ही प्राप्त या आस्वाद्य है।`[1]

। गोविंद हुलास पृ० १६७ ।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि मधुर रस से ही श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो सकती है। इसी भक्ति भावना का प्रभाव वल्लभ संप्रदायके कवियों के काव्य में हुआ है। मधुर रस की प्रक्रिया गंगावतरण जैसी मानी जाती है अत: आचार्यों ने मधुर रस को `उज्जवल रस` भी कहा है। इसी रस का पूर्ण परिपाक चैतन्य सम्प्रदाय से स्तोत्र-साहित्य में मिलता है।

चैतन्य सम्प्रदाय की स्तोत्र-परंपरा अत्यंत समृद्ध है। गौरांग , नित्यानंद , गुरू जगन्नाथ , कृष्ण , राधा , हरिकुसुम , युगल परिहार , वृन्दावन , यमुना , गोवर्धन , नवदीप , कुंजविहारी राधाकुण्ड आदि के स्तोत्र मिलते हैं जिनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं :

अनुभूति की गहराई , भावों का तारल्य , रस पेशलता एवं शैली का ~~कि~~ वैविध्य सभी कुछ इस संप्रदाय ~~स्वनकुण्ड~~ के संस्कृत स्तोत्रों में सहज सुलभ है । सनातन गोस्वामी , रूप गोस्वामी , जीव गोस्वामी , विश्वनाथ सनातन ~~गोस्वामी~~ , चक्रवर्ती , विल्व मंगल , आदि महान कवि एवं स्तोत्रकार इस संप्रदाय में हुए काव्योत्कर्ष की दृष्टि इस संप्रदाय के स्तोत्रों की समता करने की क्षमता संभवत: अनेक सप्रदायों के स्तोत्रकारों में नहीं हैं । गौरांग , नित्यानंद , गुरू जगन्नाथ , कृष्ण , राधा , हरिकुसुम , युगल परिहार वृन्दावन , यमुना , गोवर्धन , नवद्वीप , कुंज विहारी , राधाकुण्ड आदि के स्तोत्र मिलते हैं जिनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं :

गौरांग स्तवन :

दयां यो गोविन्दे गरूड़ इव लक्ष्मी पति एवं
पुरीदेवे भक्ति य इव गुरवर्यै यदु वर: ।
स्वरूपे य: स्नेहं गिरिधर इव श्री लसुवले
विधत्ते गौरांगो हृदय उदयन्यां मद न्यति ।।१०।।

..गौरांग स्तव कल्पतरू :

राधास्तोत्र :

वृन्दावनेश्वरी राधा राधै वाराध्येव मया ।
जिह्वाग्रे राधिका नाम नेत्राग्रे राधिका तनु: ।
कृष्णाग्रे राधिका ~~नम्न्~~ कीर्तिर्थि नोग्रे राधिका मनु: ।।
कृष्णेन सुपतिं स्तोत्रं श्री राधा प्रीत ये परम् ।
य: पठेत् प्रयतो नित्यं राधाकृष्ण प्रियो यवेत् ।।

कुंजविहारी के स्तोत्र

इन्द्रनील मणि मजुजुल वर्ण: फुल्लनी पकु सुमांचित कर्ण: ।
कृष्ण लाभि र कृशोरसि हारी सुन्दरो जयति कुंजविहारी ।

..रूप गोस्वामी :

इस सम्प्रदाय में गुरू की वन्दना के भी स्तोत्र लिखे गए है ..

श्री राधिका माधव योरपार माधुर्य लीला गुण रूप नाम्ना ।
प्रतिक्षण स्वाद नलो लुपस्य वन्दे गुरो: श्री चरणारविन्दम्
..विश्वनाथ चक्रवर्ती

चैतन्य महाप्रभु के जन्म स्थान के वन्दन-रूप में भी स्तोत्र लिखे गये हैं :

नवदीप स्तवन :

श्री गौडदेशे सुरदीर्घि का पास्तीरे तिरम्यै: पुरू पुण्य मय्या: ।
लसन्त मानंद मरेण नित्यं तं श्री नव दीप यहं स्मरामि ।।

चैतन्य सम्प्रदाय में 'युगल परिहार ' स्तोत्र की अधिक महत्ता है :

हे सौन्दर्य्य निदान रूपगरिमन् माधुर्य्य लीलानट ?
हे आश्चर्य विशेष वेश धरहे हे वंशि भूप विभो ।
हे वृन्दारवी भूविलासिनि । लसत्कैलि कला कौमुदी
हे राधे चरणे विधेहि शरण हे कृष्ण तृष्णा हर ।।१।।
हे हे कृष्ण बृजेन्द्र नन्दन विभो हे राधिके श्रीमति ।
हे श्री मल्ललिता दि सख्य सुखिते । हे श्यामला प्रेमदे ।
हे लीलाकलनाव लाल ललसद् भंगीत्रय प्रेयसि
हे राधे चरणे विधेहि शरण हे कृष्ण तृष्णा हर ।।२।।

परन्तु अनुसंधान-स्वरूप अब चैतन्य संप्रदाय की अनेक हिन्दी रचनायें प्रकाश में आई है जिनमें हिन्दी स्तोत्र प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं इनमें गुरू , चैतन्य , श्रीकृष्ण , राधा , तुलसी , एवं नाम महिमा के स्तोत्रों की प्रमुखता है और इन स्तोत्रों में हिन्दी स्तोत्रों की मंगलाचरण वंदना , प्रार्थना , सुमिरिनी आदि प्रवृत्तियां मिलती हैं । भक्तों ने राधाकृष्ण के 'नखशिख ' का भी वर्णन किया है जिसमें उन्होंने अपनी

उत्कृष्ट भक्ति भावना का प्रदर्शन किया है। आरती रूप में भी राधाकृष्ण की आराधना स्वरूप व कथायें लिखी गई हैं।

मंगलाचरण : इस सम्प्रदाय के मंगलाचरणों में चैतन्य महा प्रभु का ही गुणगान किया गया है और उन्हीं के प्रति नमस्कारात्मक रूप उपस्थित करके रचना की समाप्ति की कामना प्रकट की गई है। निम्नलिखित उदाहरण इसका प्रमाण है :

महाप्रभु चैतन्य हरि , रसिक मनोहर नाम।
सुमिरि चरन अरविंद वर। बरनौं महिमा धाम।

..श्री रसिक मोती पृ० १

2. वंदना : इसमें आराध्य के गुणों का गानकर उसकी आराधना में लीन हो जाता है। इन वन्दनाओं में गुरू , चैतन्य महा प्रभु युगल रूप एवं नाम की वन्दनायें प्रमुख है।

अ - गुरू वन्दना : इस प्रकार की वन्दनायें समस्त भक्ति-साहित्य में प्राप्त होती है। अत: इस सम्प्रदाय में भी उस परम्परा का अनुकरण किया गया है। कवियों ने गुरू की वन्दना करके गुरू और कृष्ण में कोई भेद नहीं किया है। गुरू की कृपा से ही कृष्ण की प्राप्ति होती है :

महिमा में गुरू कृष्ण दोउ , सदा एक करि जान।
~~कृष्ण रोष जो करत तो , राखत गुरू स टेक~~।
गुरू आज्ञा हिय धरि सदा , सत्य रूप कटि जान।
कृष्ण रोष जो करत तो राखत गुरू स टेक।
गुरु रूसै तो कृष्ण हू रखिन सकैं छनु एक।।

.. सनातन गोस्वामी के वन्दन का अनुवाद

इस प्रकार भक्तों ने अपने गुरूओं के प्रति असीम श्रद्धा का प्रदर्शन करने का प्रयत्न किया है।

आ- चैतन्य वंदना : इस प्रकार की वन्दना में श्री नंद किशोर चन्द्र गोस्वामी की `बारहखड़ी महिमा ` अधिक प्रसिद्ध है । कवि ने इसमें `महाप्रभु ` के महान गुणों का अत्यंत ही श्रद्धायुक्त होकर गान किया है । इसकी विशेषता यह है कि इसके छंद हिन्दी अक्षरों के समस्त वर्गों में क्रमानुसार लिखे गये हैं :

ककका-कलियुग आयो जान के नवदीप निज धाम ।
प्रगटे धरि जो राग वपु सुन्दर श्री घन श्याम ।।१।।
खखा खान पान और विषय प्रिय देख सकल संसार ।
करूणासिंधु महा प्रभू कीनो भक्ति प्रचार ।।२।।
गंगा गौड़ देश पावन कियो धरि गौरांग स्वरूप ।
उद्धारे हरि ने पतित परे हते भवकूप ।।३।।
घघा घर २ कीर्तन कृष्ण को करि २ पावन कीन ।
बाल वृद्ध वनिता सबहि करे प्रेम रसलीन ।।४।।

बारहखड़ी महिमा :

इ- तुलसी महिमा : चैतन्य सम्प्रदाय में `तुलसी पत्र ` की भी महिमा का गान किया गया है :

यांको दरश परशे अघ नाशइ महिमा वेद पुराणे वाखानि ।
यांको पत्र मञ्जरी कोमल , श्रीपति चरण कमले लपटानि ।

x x x x x x

शिव सनकादि आऊर ब्रह्मादिक ढुंत फिरत महा मुनि ज्ञानी ।
चन्द्र सखी मैया तेरा यश गाओये , भकति दानदिये महाराणि ।
नमो नमः तुलसि कृष्ण प्रेम सी । राधाकृष्ण सेवा पावइ अभिलाषी ।
जे तोमार शरण लयतार वांछा पूर्ण हय , कृपाकरि तारे वृन्दावन वासी

ई- नाम महिमा ..कबीर तुलसी की भांति चैतन्य सम्प्रदाय में भी राधाकृष्ण की `नाम महिमा ` भी गाई गई है युगल रूप को समस्त भक्तों एवं कवियों का

प्राणधन बताया गया है ।

जय जय राधा माधव राधा माधव राधे ।
जय देवरे प्राणधन है ।
जय जय राधा मदन गोपाल राधा मदन गोपाल राधे ।
सीतानाथरे प्राणधन है ।।
जय जयराधा गोविंद राधा गोविंद राधे ।
रूप गोस्वामीर प्राणधन है ।
जय जय राधा मदन मोहन राधामदन मोहन राधे ।
सनातनरे प्राणधन है ।

.. नित्यक्रिया पद्धति :

(3)- युगलरूप वंदना : संस्कृत के 'युगल परिहार स्तोत्र ' की भाँति हिन्दी में भी उसी भावना के स्तोत्र हैं जिसके द्वारा भक्तगण 'युगल रूप ' की उपासना कर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं । निम्नक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है :

जै श्री राधा रसिक किशोरी , रसिक रसायन कृष्ण किशोर ।
जै श्री राधा सुवरन गोरी , नील सघन घन कृष्ण सुगारे ।
जै श्री राधा दिव्य दुती अति , दैव दिव्य दुति दैव वरेश ।
जै श्री राधा कोटि सूर्य छबि अगनित रबि छवि कृष्ण सुरेश ।
जै श्री राधा हैमलतातति कृष्ण छबीलो तरूण तमाल ।
जै श्री राधा करूनारसयति , अति करूना कर कृष्ण कृपाल ।
जै श्री राधा रास रसीली , रास रसीलो कृष्ण रसाल ।।

.. श्री हरिलीला
। ब्रह्मगोपाल स्वामी ।

जयकृष्ण कुमर वर सुंदर , कुमरि किशोरी सुन्दरि राधा ।
जै जै कृष्ण रसिक रस रासी , रसि किन रासि रसीली राधा ।
जै जै कृष्ण सुधारस सागर ,मधुर सुधारस सागरि राधा ।
~~जैन्जैन्जकृष्ण~~

जै जैकृष्ण वदन शशि शोभा , पूरण चन्द्र वदन छविराधा ।

.. पद स्तोत्र

राधादेवी के विभिन्न प्रेम भावों की को लेकर भी वन्दना की गई है जिनमें मान , रोष आदि का स्वरूप अंकित किया गया है । प्रस्तुत में राधा के मान का बड़ा ही मनोहारी रूप प्रस्तुत किया गया है :

प्रेम सुधा छवि मथौ सिंधुवर प्रगटी कछु गर्भ भरी सी ।
चम्पकदल सौं न जुही गूथै कै मानो कुसुम छरीसी ।
मन्मथराज पास निज बाध्यौ पिय मन दीनक रीसी ।
विद्युत लता काम रस कृसित मेरू प्रभा हरीसी ।

..गौरांग भूषण पंजावली पृ० २८

ले० गौरांगणदास

3· प्रार्थना : इसमें भक्त आराध्य की स्तुति के साथ साथ अपनी इच्छा पूर्ति की भी कामना करता है । इस प्रकार प्रार्थना में सकाम भावना विशेष होती है । निम्नलिखित में कवि अपनी पूर्व परम्परा के भक्तों का गुणगान कर अपराध क्ष मार्जन और प्रेम भक्ति की कामना करता है :

जय गौरे भक्त वृन्द गौरे जार प्राण ।
कृपाकरि देह मोरे प्रेम भक्ति दान ।।
दन्तेतृण धरि मुइ करि निवेदन ।
कृपाकरि कर मोर अपराध यार्जन ।।
राधाकृष्ण गोविन्द यमुना वृन्दावन ।
राधाकुण्ड श्यामकुण्ड गिरि गोवर्द्धन ।
जय जय राधे कृष्ण श्रीराधे गोविंद ।
ललिता विशाखा आदि यत सखी वृन्द ।।
श्री रूप मंजरी आदि मंजरी अनंग ।
कृपाकरि देह युगल चरणार विन्द ।।

..नित्य क्रिया पद्धति :

३. सुमिरनी : इसमें आराध्य के गुणों का स्मरण कर भक्त आन्तरिक शान्ति का अनुभव करता है । चैतन्य सम्प्रदाय में ब्रह्म मुहूर्त में कमल गौर और कृष्ण का स्मरण अनिवार्य माना जाता है । इस प्रकार चैतन्य सम्प्रदाय का यह स्मरण सुमिरनी के अन्तर्गत आता है इसी प्रकार सिक्खों के जपु जी का पाठ प्रात: काल होता है । अपने स्मरण में गौड़ीय सम्प्रदाय का भक्त :

गौर गौर गौर गौर गौर गौर गौर है ।
गौर गौर गौर गौर गौर गौर गौर है ।
गौर गौर गौर गौर गौर गौर रक्षयाम् ।
गौर गौर गौर गौर गौर गौर पाहियाम् ।।१।।

तथा

कृष्ण , कृष्ण , कृष्ण , कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण है ।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण है ।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहियाम् ।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षयाम् ।।२।। १.

चैतन्य सम्प्रदाय में प्रात: सन्ध्या की आरतियों के द्वारा भी युगल रूप , गौरांग महाप्रभु , श्रीराधादेवी एवं तुलसी की वन्दना की जाती है ।

प्रात: आरती :

मंगल आरति युगल किशोर । जय जय करतहिं सखी गण मोर ।
रतन प्रदीप करै टलमल थोर । निरखत मुख विधु श्याम सुगोर
ललिता विशाखा सखी प्रेमे आगोर । करत निरमं छन दौहे दुहुं भोरत ।
वृन्दावन कुंजहि भुवन उजारे । मूरति मनोहर युगल किशोर ।
गा आते शुक पिक नाचत मयूर । चाँद उपेखि मुख निरखे चकोर ।
बाजत विविध यन्त्र धन घोर । श्यामानंद आंददे वाजाय जाय तोर ।।

राधारानी की सन्ध्या आरती :

जय जय राधे जी को शरणतोहारि ।
ऐह्न आरति यांग बलिहारि ।।
पाट पटाम्बर ओढे नील शाडी ।
सीथंक सिन्दूर यांग बलिहारि ।

...

उपर्युक्त प्रवृत्तियों के अतिरिक्त चैतन्य सम्प्रदाय में राधाकृष्ण के शिख नख का भी वर्णन किया गया है । निम्नलिखित उदाहरण इसका प्रमाण है :

सीस किरीट कटि पट पीत लखे रती मीत को रूपु रती को ।
काननि कुंडल गंडनि मंडित दंडित होत उदोतु रवी को ।
मालति माल विसाल हीये छवि जाल सो भाल रह्यो लसि टीको ।
लोचन कोरनि चोरतु चितु सु आवतु है इत भावती जी को । १.

उपरोक्त से यह सिद्ध हो जाता है कि चैतन्य सम्प्रदाय के हिन्दी स्तोत्रों में अपनी पूर्व परम्पराओं के अनुगमन का पूर्ण प्रयत्न किया गया है और राधाकृष्ण की रागानुगा भक्ति का प्रचार करके उनके मधुर रूप को उपस्थित कर काव्य में उनके प्रेम तत्व की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई है । आगे चलकर गौड़ीय काव्य का प्रभाव बल्लभ आदि अन्य सम्प्रदायों पर भी पड़ा और फलतः शृंगारिकता की उत्पत्ति हुई ।

बल्लभ सम्प्रदाय का स्तोत्र साहित्य

बल्लभाचार्य जी रूद्र सम्प्रदाय की परम्परा से ही सम्बंधित थे और उन्होंने पुष्टिमार्ग की नीवं डाली थी । इनका सिद्धान्त शुद्धाद्वैत कहलाता है जिसमें माया का विरोध करके ज्ञान से तो भक्त ब्रह्म को जान सकता है किन्तु ब्रह्म की अनुभूति उसे भक्ति से ही होगी । इसके मत में श्रीकृष्ण ही पर ब्रह्म हैं और दिव्य गुणातीत होने के कारण पुरूषोत्तम हैं । आनंद की पूर्ण प्राप्ति इसी

१- प्रो० चंद्र प्रकाश सिंह   औरिंद दुलाल नाटक १०१२८

रूप में होती है । भक्ति के अंतर्गत बल्लभाचार्य जी ने श्रद्धा के स्थान पर प्रेम को अधिक महत्व दिया है । इस प्रकार इन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति ग्रहण की है । "इस प्रेम लक्षणा भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति तभी होती है , जब भगवान् का अनुग्रह होता है , जिसे पोषण या पुष्टि कहते हैं । इसी कारण बल्लभाचार्य जी ने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टि मार्ग ' रखा । [1] " जिस मार्ग में भगवद् विरह अवस्था में भगवान् की लीला के अनुभव मात्र से संयोगावस्था का सुख अनुभूत होता है और जिस मार्ग में सब भावों में लौकिक विषय का त्याग है और उन भावों के सहित देहादि का भगवान् को समपर्ण है वह पुष्टि मार्ग कहलाता है । [2] " 'पुष्टि मार्ग ' में 'निग्रह ' की अत्यंत आवश्यकता है जिसे बल्लभाचार्य जी ने निरोध ' की संज्ञा दी थी । इसके द्वारा 'भक्त के सुख दुख उस लीला धारी की लीला से अनुलग्न हो जाते हैं । [3] " निरोध भाव के द्वारा ही भगवान् भक्ति को लौकिक आसक्ति से मुक्त रखता है । सूरदास जी इस निरोध तत्व के पारखी थे और इसी आधार पर उन्होंने 'सूरसागर ' की रचना की थी । सूरदास के भ्रमरगीत में जिस निस्वार्थ समर्पण की भावना का विवेचन किया गया है उसके मूल में बल्लभाचार्य की 'निरोध भावना ' को ही प्रधानता दी गई है ।

श्री बल्लभाचार्य ने गोपियों को पुष्टिमार्ग का गुरू माना है क्योंकि वे ही कृष्ण से वास्तविक प्रेम करना जानती है और उन्हें कृष्ण का सच्चा अनुग्रह प्राप्त हुआ था । पुष्टिमार्ग में तीन तत्व विशेष उल्लेखनीय हैं :

१. गोप गोपी जनों के जीवन का भक्तों द्वारा अनुकरण
२. गोपियों का कृष्ण प्रेम की वास्तविक अधिकारिणी होना
३. प्रवाह पुष्टि ।

---

१. डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी .. रीतिकालीन कविता में श्रृंगार रस का विवेचन पृ० १६०
२. डा० दीनदयालु गुप्त .. अष्ट छाप और बल्लभ सम्प्रदाय
३. डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी वही पृ० १६४

श्री वल्लभाचार्य की भक्ति `वात्सल्य भाव ` की थी परन्तु वाद में अष्ट छाप के कवियों और विट्ठलनाथ जी के धार्मिक सिद्धान्तों में संभवत: चैतन्य संप्रदाय के प्रभाव के कारण से मधुरभाव की भक्ति प्रारम्भ हो गई। इसका मूल कारण चैतन्य सम्प्रदाय के `मधुर रस ` का प्रभाव ही कहा जा सकता है। चैतन्य सम्प्रदाय के `मधुर रस में शान्त, वात्सल्य, सख्य एवं दास्य भावों की प्राप्ति सहज में ही हो जाती है।

अष्टछाप के कवियों का स्तोत्र-साहित्य

सूरदास : अष्ट छाप के कवियों में सूरदास जी सर्वश्रेष्ठ कवि हैं उन्होंने विनय और वात्सल्य के अतिरिक्त भक्तिपूर्ण श्रृंगार की सर्वोत्कृष्ट रचना की है। वे भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे और समस्त देवताओं को कृष्णमय देखते थे। उनके कृष्ण परात्पर ब्रह्म और पुरुषोत्तम हैं और उनके अनुग्रह से ही मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। तुलसीदास जी ने राम में अनन्यता रखते हुए भी गणेश, सरस्वती, शंकर आदि की आराधना की थी परन्तु सूरदास जी ने कृष्ण के अतिरिक्त अन्य की वंदना नहीं की।

सूरसागर उनकी भक्तिपूर्ण रचनाओं का महान ग्रंथ है। सूरसागर के पदों के ~~तीन~~ चार विभाग किए जा सकते हैं :

१. विनय के पद

२. सख्य भाव के पद

४. वात्सल्य भाव के पद

३. श्रृंगारिक पद

विनय के पद : इस प्रकार के पदों में उनकी भक्ति भावना का पूर्ण प्रदर्शन हुआ है और ~~उनमें~~ इन पदों में उनकी ब्रह्म के प्रति असीम निष्ठा भक्ति और श्रद्धा का पूर्ण विवेचन हुआ है। `विनय के पदों मे व्यक्त सूरदास की दीनता उनके स्वभाव का अन्यतम लक्षण है जिसे उन्होंने अनेक पौराणिक एवं

स्वकल्पित आख्यानों के संदर्भों में विविध सहयोगी भावों के साथ चित्रित किया है। कृपालुता के अतिरिक्त अपने भगवान् के अन्य अनेक गुणों से आत्मीयता पूर्ण परिचय हो जाने के बाद सूरदास का भाव भले ही जगमगा उठा और उनकी दीनता ऊपर से बहुत कम दिखाई दी, पर वस्तुत: वह भावों के अन्तराल में निरन्तर विद्यमान रहती है और तनिक से आघात से दबे हुए स्रोत की भाँति उच्छल गति से फूट पड़ती है। भक्त हृदय सूरदास की दीनता में आरम्भ से ही मलिनता का कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता गंभीरता पूर्वक भगवान् को उनके विरुद का स्मरण कराते और उस नाते अपने पापों की भारी गठरी की ओर संकेत करते हुए भी वे आत्मीयता सूचक बातें कहने लगते हैं, जो दीनता से भिन्न भावों की द्योतक है।"[1] इस प्रकार विनय के पदों में सूरदास जी भक्ति की भाव भूमि से ऊपर उठकर कृष्ण के प्रति अपनी उत्कट तन्मयता का परिचय देते हैं।

सख्य भाव के पद : इस प्रकार के पदों में सूरदास जी ने कृष्ण की सख्य भाव से उपासना की है। बाल वर्णन के पद इसी कोटि में रक्खे जा सकते हैं। इनमें उनके कृष्ण सदैव उनके क्रीड़ा सहचर हैं। गोपियाँ जो कामभाव से उद्वेलित हैं, श्रीकृष्ण को सदैव पति और प्रेमी के रूप में देखती हैं।"[2]

शृंगारिक भावना के पद: इस प्रकार के पदों में उन्होंने सच्चे प्रेममार्ग के त्याग और पवित्रता को ज्ञान मार्ग के त्याग और पवित्रता को सन्निकट समान रूप देने का प्रयत्न किया है साथ ही त्याग को रागात्मक भावना से पूर्णकर प्रेममार्ग की सुगमता का प्रतिपादन किया है।

---

१. डा० ब्रजेश्वर वर्मा .. सूरदास पृ० ४५१ .५२

२. वही पृ० ४४२

विनय , सख्य एवं श्रृंगारिक भावना वाले पदों में हिन्दी स्तोत्रों की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ मिलती है :

मंगलाचरण , वंदना , स्तुति , प्रार्थना , विसंद

1. मंगलाचरण : इस प्रकार के पदों के द्वारा कवि अपने ग्रंथ की सफलता की कामना करता है । तुलसी आदि रामोपासक कवियों ने गणेश , सरस्वती आदि का मंगलाचरण किया है । परन्तु सूर की उत्कट अनन्यता का यह प्रमाण है कि उन्होंने अपने मंगलाचरणों में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी दूसरे देवी देवता की वन्दना ही नहीं की है । अनन्य भाव से उन्हें केवल कृष्ण भक्ति में ही सन्तोष है । उनके लिए कृष्ण ही जगत नियंता , जगदीश और जगद्गुरू है और उनके चरणों का वन्दन ही समस्त कार्यों की सिद्धि दे सकता है :

चरण कमल वन्दहुं हरिराई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे , अंधे को सब कुछ दर्शाई ।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै , रंक चले सिर छत्र धराई ।
सूरदास स्वामी करूनामय , बार बार वंदहु तेहि पाई ।।

.. सूरसागर

बंदहु चरन सरोज तिहारे ।
सुंदर स्याम कमल दल लोचन ललित त्रिभंगी प्रान पियारे ।

.. सूरसागर

उनके मंगलाचरणों की एक विशेषता यह भी है कि उनमें कृष्ण को ही सर्व सिद्धिदाता माना गया है ।

2. वन्दना : इस प्रकार के पदों में साधक अपने आराध्य के गुणों का गान करता है । सूर ने अपनी वन्दनाओं में कृष्ण के सर्वोपिरि गुणों की वन्दना करके उन्हें निस्वार्थी मित्र सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । श्रीकृष्ण ही अशरण शरण और दीन बंधु हैं । तभी तो वह कृष्ण की वन्दना करता है । सूरसागर में इस प्रकार के पदों की प्रचुरता है । निम्नलिखित इसके उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है :

वासुदेव की कौन बड़ाई ।
जगत पिता , जगदीस ,जगत गुरू , निजभक्तन की सहतु ढिठाई ।
भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर , बौले वचन सकल सुखदाई ।
सिव बिरंचि मारन कौ धाए , यह गति काहू देवन पाई ।
बिनु बदले उपकार करत हैं , स्वारथ बिना करत मिताई ।
रावन अरि कौ अनुज विभीषन , ताकौं मिले भरत की नाईं ।
बकीक पट करि मारन आई , सौ हरि जू बैकुंठ पठाई ।
बिनु दीन्हैं ही देत सूर प्रभु , ऐसे हैं जदुनाथ गुसाँई ।

.. सूरसागर

३. स्तुति : इसमें भक्त अपने आराध्य की प्रार्थना सकाम एवं निष्काम दोनों भावों से करता है । सूरदास जी अपनी स्तुतियों में भगवान् के विसद का स्मरण कराकर और अपनी आत्मीयता का परिचय देते हैं । उनके स्तुति पदों में भी कृष्ण के प्रति अनन्य भाव में किसी भी प्रकार से कमी न होने पाई है । सूरसागर में इसके अनेक उदाहरण हैं :

अबकै राखि लेहु भगवान् ।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया , पारधि साधे बान ।

..सूरसागर

अबकै नाथ मोहि उधारि ।
मगन हौं भव अंबु-निधि में , कृपा सिंधु मुरारि ।

.. सूरसागर

४. प्रार्थना : इस प्रकार के पदों के द्वारा साधक , अपनी कामना पूर्ति की आकांक्षा करता है । ऐसे पदों में सकाम भावना की अधिकता रहती है । सूर के दार्शनिक भावना सम्बंधी पद इसी के अन्तर्गत आते हैं । सगुण निर्गुण की समस्या का समाधान `भ्रमरगीत ` प्रसंग में किया गया है । इसमें सूर की उच्चकोटि की दार्शनिकता का दर्शन होता है । वे कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी की प्रार्थना ही नहीं करना चाहते । डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है .. 'सूरदास की भक्ति में अनन्य भक्ति भावना की दृष्टि से इष्टदेव के अतिरिक्त इतर देवी देवताओं का ही बहिष्कार नहीं है, इष्ट देव के प्रति भक्त का जो नाता हो उसके अतिरिक्त अन्य सम्बंधों के भावों का भी निराकरण है।'[1] अनेक उदाहरण इसके साक्ष्य है :

अब मोहिं सरन राखियो नाथ ।
कृपाकरी जो गुरू जन पठए, बह्यो जात गह्या हाथ ।
.. प्रथम स्कंध

अब मोहिं मज्जत क्यों न उबारो ?
दीनबंधु करूनानिधि स्वामी जनके दु:ख निवारो ।।
.. प्रथम स्कंध

मेरी सुधि लीजो हो ब्रजराज ।
और नहीं जगमें कोउ मेरो, तुमहिं सुधारन काज ।।
प्रथम स्कंध

अब मेरी राखो लाज मुरारी ।
संकट में इक संकट उपजो कहै मिरगसो नारी ।
..प्रथम स्कंध

आचार्य नंद दुलारे बाजपेई ने सूर की इस प्रकार की भक्ति के विषय में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है .. 'व्यक्त सौंदर्य की जो अव्यक्त और निगूढ़ अन्तर्गतियाँ कवि ने दिखाई हैं वे कृष्ण को रहस्यमय स्वरूप प्रदान करती हैं। इसी रहस्य मय स्वरूप से उपास्य कृष्ण की प्रतिष्ठा होती है। जो प्रेम प्रसंग व्यक्तिगत और वाह्य घटनाओं से प्रकट हैं। उनका उपयोग भी क्रमश: अनिवर्चनीय रहस्यमय, सामूहिक प्रेम ।भक्ति। की अभिव्यक्ति के लिए ही होता है। सूरदास की यही मुख्य काव्य साधना है।'[2] जिस प्रकार तुलसीदास जी समस्त जगत को

---

१. डा० ब्रजेश्वर वर्मा .. सूरदास पृ० १४१

२. आचार्य नंद दुलारे वाजपेई .. सूरसंदर्भ पृ० २८ .. २६

`सीयराम मय ` मानते हैं उसी प्रकार सूरदास जी श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अनन्यता का प्रदर्शन कर समस्त देवताओं में भी कृष्ण का ही अनुभव करते हैं ।

४. विशुद्ध : यद्यपि सूरदास जी ने इस विषय में कोई पृथक शैली नहीं अपनाई है वरन् `नखशिख ` वर्णन करके कृष्ण के गुणों की सर्वोत्कृष्टता व्यक्त की है । नखशिख का विशद वर्णन पृथक अध्याय में किया गया है । यहाँ केवल प्रसंगानुसार कुछ उद्धरण दिये जाते हैं :

मोर मुकुट मकराकृत कुंडल , कुटिल अलक मुख पर छवि पावत ।
भृकुटी विकट नैन अति चंचल इहिं छवि पर उपमाइक धावत ।
धनुष देखि खंजन विवि डरपत , उड़ि न सकत उड़ि वै अकुलावत ।
अधर अनूप मुरलि सुर पूरत गौरी राग अलापि बजावत ।।

...दसमस्कंध

अथवा :

ये लख आवत मोहनलाल ।
स्याम सुभग धन , तड़ित बसन बग पंगति , मुक्तामाल
गोपद रज मुख पर छवि लागति कुंडल नैन विसाल ।
बल मोहन बन ते बने आवत लीन्हे गैया जाल ।।

.. वही

वात्सल्य भाव के पद

इस प्रकार के पदों में वात्सल्यरस की प्रधानता है । सूरदास जी का वात्सल्य वर्णन हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है जिसमें उन्होंने बाल स्वभाव के अंग प्रत्यंग का वर्णन करके बाल सुलभ सभी दशाओं का अत्यंत ही मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है । नंद और यशोदा बाल भाव कृष्ण के साथ पुत्रवत् व्यवहार करते हैं । इस प्रकार उनकी भक्ति भावना के स्तोत्रों में वात्सल्य रस की प्रधानता है । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :

मेरो नान्हरिया गोपाल बेगि बड़ौ किन होई ।।

..सूरसागर

ललन हौं या छवि ऊपर बारी ।

बाल गोपाल लागौ इन नैननि , रोग बलाइ तुम्हारी ।

लट लटकनि , मोहन मसि बिंदुका तिलक भाल सुखकारी ।।

.. दशम् स्कंध

लालनवारी या मुख ऊपर ।

माई मेरिहि दीठि न लागै , तातैं मसि विंदा दियौ भ पट ।

सरवस मैं पहिलै ही वारयौ , नान्हीं नान्हीं दंतुली दु पद ।

अब कहा करौं निछावरि सूरजं सोचति अपने ललन जू पट ।।

.. दशम स्कंध

श्रृंगारिक पद : इस प्रकार के पदों में सूरदास जी की तात्विकता उच्चकोटि की है । रतिभाव के भीतर जितनी मानसिक वृत्तियों का अनुभव किया जा सकता था सूर ने उनका प्रत्यक्षीकरण करने का प्रयत्न किया है । 'इस क्षेत्र में ऐसी गहरी पैठ सूर के अतिरिक्त अन्य किसी की भी नहीं दिखाई पड़ती है । वल्लभाचार्य जी ने भक्ति मार्ग में प्रेम की प्रतिष्ठा करके उसके आविर्भाव से 'सायुज्य मुक्ति ' का पथ निर्दिष्ट किया था । सूर ने भी इसकी ओर संकेत किया है :

जायजें समाय सूर वा विधि में , बहुरिन उलटि जगत में वाचे ।

.. सूरसागर

राधा के सम्बंध में उन्होंने अपना मार्ग अपनाया है । सूरदास की राधा न कृष्ण की प्रेयसी है और न परकीया वरन् सूर उसे पत्नी रूप में मानते हैं । इसीलिए सूर की राधा स्वकीया है और साथ ही साथ उनकी समस्त गोपियां भी स्वकीया है । इस प्रकार उनके श्रृंगारिक पदों में शिष्टता एवं मर्यादा का उचित रूप विद्यमान है । 'यथार्थ में उनकी रचनाओं पर यद्यपि पुष्टिमार्ग का प्रभाव है पर उनमें अधिकतर कृष्ण और गोपियों का प्रेम वर्णन हुआ है । उन्होंने ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को बताकर

ब्रह्म के विरुद्ध धर्मत्व के भाव को स्वीकार किया है ।` प्रेमगीत प्रसंग में गोपियों के माध्यम से सूर अपनी दार्शनिक भावना का विवेचन करते हैं परन्तु इस प्रकार के पदों में भी उनकी कृष्ण के प्रति अनन्यतायें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने पाई है । गोपियां कहती हैं :

पिय बिनु नागिनि कारी रात ।
कबहुक दामिनि होति जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात ।।
.. सूरसागर

उधो मन नाही दसबीस ।
एकहु तौसो गयो स्याम संग को आराधै ईस ।
.. सूरसागर

इस प्रकार के स्तोत्र साहित्य में पुष्टिमार्ग के सभी सिद्धान्तों का पूर्ण रूपेण समावेश हुआ है ` प्रसंगोद्भावना करने वाली ऐसी प्रतिभा हम तुलसी में नही पाते । बाललीला और प्रेमलीला दोनों के अन्तर्गत कुछ दूर तक चलने वाले न जाने कितने छोटे छोटे मनोरंजक वृत्तों की कल्पना सूर ने की है । जीवन के एक क्षेत्र के भीतर कथा वस्तु की यह रमणीय कल्पना ध्यान देने योग्य है । `[१] उनकी सी अनन्यता और गहनता अन्यत्र दुर्लभ है और यदि उनकी तुलना गोस्वामी तुलसीदास जी से की जाय तो वे कुछ आगे निकल जाते हैं । डा० आर० डी० रानाडे ने उनकी भक्ति भावना के विषय में अत्यंत ही मार्मिक विवेचना किया है ।[२] यद्यपि सूरदास जी ने हिन्दी भक्ति काव्य में `पुष्टि मार्ग` की ही प्रतिष्ठा की है पर वे अपनी पूर्ववर्ती योग साधनाओं से नहीं बच सके हैं । डा० दीनदयालु गुप्त का इस विषय में मत है .. `कबीर का अनहदनाद कृष्ण

---

१. आचार्य रामचंद्र शुक्ल .. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १७२

✓२. Dr. R. D. Ranade – Pathway to God pages 203

मुरली ध्वनि में व्याप्त है । सूफियों की प्रेमभावना को भी गोपी कृष्ण के प्रेम में परितोष प्राप्त हो सकता है ।[1] परन्तु उन पर सूफियों की प्रेम भावना के स्थान पर चैतन्य सम्प्रदाय की मधुर भावोपासना का पूरा प्रभाव पड़ा है ।

अष्ट छाप के अन्य स्तोत्रकार :

परमानंददास : अष्टछाप के कवियों में परमानंददास जी का भी प्रमुख स्थान है भगवान् कृष्ण में लीन होकर इन्होंने अपने अन्त:करण की समस्त श्रद्धा एवं भक्ति को अर्पित करने का प्रयत्न किया है । इनकी रचनायें दो प्रकार की है :

१. स्तुति परक

२. श्रृंगारी

स्तुति परक : यह स्तोत्र भी दो प्रकार के हैं । प्रथम में तो स्तोत्रकार दास्य रूप में कृष्ण से पापमुक्ति की प्रार्थना करता है और द्वितीय में एक विरहणी की भांति प्रभु दर्शन की कामना करता है । उसने पाप किए हैं अत: प्रभु उसे मुक्ति दे ।[2] ऐसे स्तोत्रों में सकाम भावना अधिक दिखाई पड़ती है ।

उनकी गोपिकाएं कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को अपनाना नहीं चाहती । सूरदास की भांति ही परमानंद दास की भी कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति है । यदि कृष्ण नहीं आते तो वे अपने को कैसे जीवित रख सकेंगी :

बहुरि हरि आवहुगे किहि काम ।
रितु बसंत अरू मकर बितीते अरू बादर मे स्याम ।
तारे गगन गनत री माई बीते चार्यो याम ।
मोरे काज सब बिसरि गये हरि , लेत तुम्हारो नाम ।
निनु आगन छिनु द्वारे ठाड़ी हम सूखत हैं धाम ।
परमानंद प्रभु रूप विचारत स्नेह अस्थि अरू चाम ।[2]

---

१. डा० दीनदयालु गुप्त .. अष्ट छाप और बल्लभ सम्प्रदाय पृ० ४०७
२. वही पृ० ३८२
२. वही परमानंद पद संग्रह पद ३६

उपर्युक्त पद में भक्ति पक्ष विशेषरूप में है । उसे तो प्रतिक्षण अपने आराध्य का ही स्मरण होता है :

मधु माधव नीकी ऋतु आई ।
खेलन योग अबहिं वृन्दावन कमल नैन हरि देखहु आई ।
मदन महीपति कोपि पलानो दुहोदिसि जाकी फिरी दुहाई । १.

इन पदों को 'सुमिरिनी' के अन्तर्गत रखा जा सकता है क्योंकि गोपिकायें कृष्ण का स्मरण कर उन्हीं में लीन होना चाहती हैं । उनकी तृप्ति निर्गुण संतों की भांति केवल दर्शन से ही हो सकती है । वास्तव में जब उपासक किसी में अत्यधिक अनुरक्त हो जाता है तो उसके अन्तर्पटल पर एक उत्कृष्ट आकांक्षा जाग्रत हो जाती है और उसी की पूर्ति उसके जीवन का एक विशिष्ट अंग बन जाती है । फिर प्राणी कालिदास के यक्ष की भांति प्रत्येक से उसके लिए संदेश भिवाता है :

भर्तु मित्रं प्रियम निधेव विद्धि मामम्बु वाहं ।
तत्संदेशं र्हदेय निहितै रागतं खत्समीयम् ।। २.

इस प्रकार परमानंद दास जी भी कृष्ण के अनन्य भक्त हैं । उनके पदों की भाषा सरल और मधुर है और समस्त पद गेय हैं ।

नंददास : 'अष्टछाप के स्तोत्रकारों में नंददास का भी एक विशेष स्थान है । आत्मिक अनुराग के पयोनिधि में उनकी आत्मा निरन्तर आनंद लेने का प्रयत्न करती है । उनके पदों में हिन्दी स्तोत्रों की निम्नलिखित प्रवृत्तियां प्राप्त होती हैं :

१. मंगलाचरण
२. वंदना
३. स्तुति
४. प्रार्थना

---

१. डा० दीनदयालु गुप्त .. ~~अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय~~ परमानंद पद संग्रह पद १३६
२. कवि कालिदास मेघदूत ।उत्तरमेघ । श्लोक ४१

<u>मंगलाचरण एवं वन्दना :</u>

नंददास जी ने अपनी अनेकार्थ मंजरी में मंगलाचरण लिखे हैं। डा० दीनदयालु गुप्त ने इस विषय में लिखा है कि 'ग्रन्थ के मंगलाचरण और आरम्भिक बन्दना में नंददास जी ने शुद्धाद्वैत अविकृत परिणाम वाद के साम्प्रदायिक विचारों को प्रकट किया है।'[१] उन्होंने आगे फिर लिखा है कि 'ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने वल्लभ सम्प्रदायी शुद्धादैत विचार व्यक्त किए हैं। कवि कहता है कि मैं उस देव को नमस्कार करता हूं जो ।कृष्ण। ~~रू~~ स्वयं ही उस जगत का कारण। उपादान कारण। और करन। निमित्त। है, एक ही वस्तु अनेक रूप बनाकर इस जगत को बना रही है जैसे एक वस्तु कञ्चन ही कंकन, कुण्डल, किंकिनी आदि अनेक रूपों में स्थित रहता है। यही वल्लभ सम्प्रदाय का अविकृत परिणामवाद है'।[२]

रास पंचाध्यायी,[३] रसमंजरी[४] एवं रूक्मिणी मंगल[५] आदि में बन्दना में लिखी गई है। अपनी वन्दना में नंददास जी ने गुरू को भी अत्यंत ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है। वन्दना के माध्यम से नंददास जी ने कृष्ण की सच्चिदानंद रूपा भक्ति का निरूपण किया है।

अपनी स्तुतियों में भक्त सांसारिक तापों से मुक्ति की ही कामना करता है। 'रास पंचाध्यायी' एवं 'भंवरगीत' उनकी दार्शनिकता एवं ब्रह्म की यथार्थता सम्बंधी पद हैं।

---

१. डा० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ७६६

२. जु प्रभु जोतिमय जगत मय, कारन करन अभेव,
   विघन हरन सब सुख करन, ~~म~~ नमो नमो तादेव।
   अनेकार्थ मंजरी पृ० ६८

३. रासपंचाध्यायी पृ० १८३, १८४, ३४२

४. ~~रूक्मिणी मंगल पृ०~~ रस मंजरी पृ० ३४

५. रूक्मिणी मंगल पृ० १४२

कृष्ण को छोड़कर अन्य कोई उसे मुक्ति नहीं प्रदान कर सकता ।[1]

प्रार्थना :

ऐसे स्तोत्रों में नंददास जी की सकाम भावना विद्यमान है । अपनी 'अनेकार्थ मंजरी' के अन्त में स्तोत्रकार ने कृष्ण भगवान् से उनके चरणों में प्रेम देने की प्रार्थना की है ।[2] इसी पद में कपट आदि मानसिक विकारों के त्यागने की प्रार्थना भी की गई है । अपनी नीचता और लघुता के कारण अब वह कृष्ण की ओर ही दृष्टि लगाये हुए है ।[3]

इस प्रकार स्तोत्रकार ने अपने पदों में प्रभु के प्रति अपनी असीम श्रद्धा एवं अनुराग का प्रदर्शन किया है । वह साधना मय है अत: समस्त राग द्वेष भुलाकर ही उसकी शरण में जाना चाहिए ।

कुंभनदास : हिन्दी संसार में अभीतक इनका कोई भी पद संग्रह प्रकाश में नहीं आया है ।[4] इनके हस्तलिखित ग्रंथों में मंगलाचरण, प्रार्थना, वंदना, स्तुति आदि विद्यमान हैं ।[5] एक पद उनकी अनन्यता का उपस्थित किया जाता है :

संतन कहा सीकरी काम ।
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरिनाम ।
जिनको प्रभु देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी ।
कुंभनदास लाल गिरधर बिनु और सबै वेकाम सलाम ।[6]

राधावल्लभ सम्प्रदाय के स्तोत्रकार :

हित हरिवंश .. इस सम्प्रदाय के प्रमुख स्तोत्रकार हैं । इनकी

---

१. अनेकार्थ मंजरी छं० १७

२. तैल सनेह सनेह घृत, बहुरो प्रेम सनेह,
सो निज चरनन गिरधरनै नंददास को देहु ।। अनेकार्थ मंजरी छं० ११५

३. डा० उमाशंकर शुक्ल .. सिद्धान्त पंचाध्यायी पृ० १८८, ३१६ रासपंचाध्यायी पृ० १५८

४. डा० दीनदयालु गुप्त .. अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ३११

स्द

रचनायें 'हित हरिवंश' में संग्रहित हैं। राधा के प्रति लिखे गीतों में भाव व्यंजना एवं सरसता सर्वोत्कृष्ट है। राधाकृष्ण की वन्दना करके कवि ने अपनी अनन्यता का उत्कृष्ट रूप उपस्थित किया है :

रहौ कोऊ काहू मनहि दिये।
मेरे प्राणनाथ श्री राधा, सपथ करौ तिन छिये।
जे अवतार कदंब भजत हैं, धरि दृढ़ व्रत जु हिए।
तेऊ उमगि तजत मरजादा, वन विहार रस पिये।
खोये रतन फिरत जे घर घर कौन काज इमिजिये।
हित हरिवंश अनतु सचु नाहीं बिनया रसहि पिये।

....हित चौरासी

ध्रुवदास : इन्होंने भी श्रीकृष्ण लीला के साथ साथ प्रेम और भक्ति के पद रचे थे। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण इनकी उपासना में भी राधा जी प्रमुख हैं। निकुंज रस की अनन्य उपासना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। अन्य स्तोत्रकारों में रसिकदास एवं हरीराम व्यास प्रमुख हैं।

टट्टी सम्प्रदाय के प्रमुख स्तोत्रकार : यह सम्प्रदाय भी निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत था जिसके प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे। निम्नार्क सम्प्रदाय की भांति इस सम्प्रदाय में 'युगल दम्पत्ति' की उपासना पर महत्व दिया गया है। राधा का उपासना में विशेष स्थान है। इस सम्प्रदाय में दो प्रमुख स्तोत्रकार हैं।

१. स्वामी हरिदास
२. श्री भट्ट

पिछले पृष्ठ का :

५. डा० दीनदयालु गुप्त ..अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ३१३
। कांकरौली विद्याविभाग में कुंभनदास जी का पद संग्रह।
६. दे० आचार्य राम चंद्र शुक्ल .. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १६४

स्वामी हरिदास : इनका आविर्भाव संवत् १६१७ के लगभग हुआ था । प्रसिद्ध संगीत चार्य होने के कारण इनके पद गीतात्मक हैं और उनमे नखशिख वर्णन की प्रमुखता है । हरिदास जी की प्रार्थना में तन्मयता , प्रेम , भक्ति आदि भावनायें प्रबल रूप में विद्यमान है :

ज्यौं ज्यौं हौ तुम राखत हौ त्यौं ही त्यौं ही रहियत हौं हे हरि ।
और अमर वे पाप धरौ सुतौ कहौ कौन के पैंड भीर ।।
जदपि हौ अपनो भायौ कियौ चाहैा कैसे करि सकौं जो
तुम राखौ पकरि ।
कहै हरिदास पिंजरा के जानावर लौं तरफराय रह्यौ उड़िबे
कितेऊ करि ।।

श्री भट्ट : यह भी टट्टी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं । इनके गीतों में निकुंज लीला सम्बंधी पदों की प्रधानता है । 'युगल शतक ' में भक्ति भावना के पद संग्रहित हैं जिनमें तन्मयता की भावना यथेष्ट रूप में हैं । उनकी प्रार्थना का एक उदाहरण उपस्थित किया जा रहा है जिसमें कवि की आन्तरिक भक्ति भावना प्रचुर रूप में विद्यमान है :

बसौ मेरे नैननि में दोउ चन्द ।
गौर वदनि वृषभानु नंदिनी स्याम बरन नंद नंद ।
गोल कर है लुभाय रूप में निरखत आनंद कंद ।
जयश्री भट्ट प्रेम रस बंधन क्यों छूटे दृढ़ फंद ।।

... युगल शतक

उपर्युक्त पद में प्रेम एवं भक्ति की प्रधानता है ।

मीरा के गीतों में स्तोत्रात्मक प्रवृत्ति :

भक्तिकालीन गीतकारों में मीरा का एक विशिष्ट स्थान है ।

डा० रामचंद्र मिश्र ने इस विषय में लिखा है कि "मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की थी । वह कृष्ण की पति रूप में उपासना किया करती थी । इस भावना में अभेदता के कारण भक्त उन्मुक्त और स्वछंद हृदय से सभी कुछ कहता है । इसी से मीरा के पदों में अपूर्व स्वर भाविकता और प्रसादिकता है ।"[१] मीरा के समस्त पदों में विरह भावना उच्च कोटि की है । यद्यपि निर्गुण संतों एवं सूफियों की भी विरह भावना इसी प्रकार की है पर मीरा में कुछ और ही अनुभूति है जिसका तात्त्विक मूल्यांकन सरलता से नहीं हो सकता ।

मीरा के पदों की भी तीन कोटियां है :

वंदना , स्तुति , नखशिख

वंदना : मीरा के ने कृष्ण के चरणों की वन्दना की है । वे चरण संसार के त्रय तापों को नष्ट करने वाले है । तभी तो

मनरे परसि हरि के चरन ।
जिण चरण प्रहलाद परसे इन्द्र पदवी धरण ।
जिण चरण कालीनाथ नाथ्यौं गर्व मघवा हरण ।।

.. मीरा पद् संग्रह :

स्तुति : उनकी स्तुतियां संयोग एवं वियोग दोनों रूपों में है परन्तु उनमें भी वियोग पक्ष की अधिक स्तुतियां हैं । एक विरहिणी की भांति उन्हें भी अपने प्रियतम कृष्ण का विरह दुःख प्रदान करता है । वह केवल उसी का दर्शन चाहती है :

तैं दरद नहिं जान्यूं , सुनिरे वैद अनारी ।
तू जा वैद घर आपणेरे , तुफे खबर मोरि नाही ।
मोरे दरद का तू मरम नहिं जाणै करक क लेजा रे माहीं ।
प्राण जाण का सोच नाहिं मोहि , नाथ दरस धो आरी ।

..मीरा बृहत पद संग्रह पृ० पद ३१
पद्मावती 'शबनम'

---

१. दे० डा० राम चंद्र मिश्र ..हिन्दी पद परम्परा और तुलसीदास पृ० १५२

जायसी की नागमती भी इसी प्रकार कहती है । [१.]

मीरा की कृष्ण के प्रति अनन्यता एवं असीम भक्ति प्रशंसनीय है । यदि इस पर भी कृष्ण उसकी उपेक्षा करते हैं तो इसका उसे अत्यंत ही पश्चाताप है :

पिय बिन रह्यौ न जाइ ।
तन मन मेरा पिया पर वारू बार बार बलि ~~जाइ~~ जाइ ।
निसदिन जोऊँ बाट पिया की कबरे मिलोगे आइ ।
मीरा के प्रभु आस तुम्हारी , लीजो कण्ठ लगाइ ।। [२.]

उसके तो कृष्ण ही सब कुछ हैं । वह तो कहती है :

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।

.. वही :

। नखशिख सम्बंधी पदों का विश्लेषण पृथक् अध्याय में किया गया है ।

इस प्रकार मीरा के समस्त पदों में प्रिय विषयक मधुर भावना विद्यमान है जो सभी को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ है ।

गदाधर भट्ट : भट्ट जी की अनन्यता एवं भक्ति का अत्यंत ही मधुर रूप उनके पदों में विद्यमान है । निम्नलिखित में राधा की वेदना का कितना मनोहारी रूप उपस्थित किया गया है :

जयति श्री राधिके सकल सुख साधिके ,
तरुनि मनि नित्य नवतन किसोरी ।
कृष्ण तन लीन मन रूप की चातकी ,
कृष्ण मुख हिम किरन की चकोरी ।

---

१. यहु तनु जारौं छार कै कहउं का गगन उड़ाय ।
मकु ओहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहँपाँय ।
.. जा० ग्र०

२. पद्मावती 'शबनम' .. मीरा वृहद पद संग्रह पद ४१

कृष्ण दृग भँग विश्राम हित पद्मिनी ,
कृष्ण दृग मृगज बँधन सुडोरी ।
कृष्ण अनुराग मकरंद की मधुकरी ,
कृष्ण गुन गान रससिंधु बोरी ।
विमुख पर चित तें चित्त जाको सदा ,
करतिनि ~~कर~~ जनाह की चित्त चोरी ।
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसे बने ,[1]
अमित महिमा इतै बुद्धि थोरी ।।

अन्य अष्ट छाप के कवियों की रचनायें अभी प्रकाशित नहीं हैं अत: उन पर विचार नहीं किया गया है ।

रसखान का स्तोत्र साहित्य

मुसलमान कवियों में रसखान अपने श्रीकृष्ण प्रेम और उत्कृष्ट भक्ति भावना के लिए प्रसिद्ध हैं । सुजान रसखान एवं 'प्रेम वाटिका' में इनकी भक्ति तन्मयता के पद संग्रहित हैं । इन पदों में अनुराग , दास्य , सेवा , अनन्यता एवं भक्ति भावना के पदों की प्रमुखता है । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इनकी भक्ति भावना के विषय में लिखा है .. 'श्रीकृष्ण भक्ति के साहित्य में जिस मधुर भाव पर बहुत अधिक बल दिया गया है उसमें विश्व जनीन तत्व है । धर्म सम्प्रदाय और विश्वासों के बाहरी बन्धन उस विश्व जनीन माधुर्य तत्व के आकर्षण को रोक नहीं सके हैं । उन दिनों अनेक मुस्लिम सहृदय इस मधुर भाव की भक्ति साधना से आकृष्ट हुए थे । इन सबमें प्रमुख हैं 'बादसावंश की ठसक' छोड़ने वाले सुजान रसखानि । ... सहज आत्म

---

[1] दे० आचार्य शुक्ल .. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १६६

समर्पण, अखंड विश्वास और अनन्य निष्ठा की दृष्टि से रसखान की रचनाओं की तुलना बहुत थोड़े भक्त कवियों से की जा सकती है।

कृष्ण उनके आराध्य हैं और उनकी उपासना ही रसखान के जीवन का मुख्य उद्देश्य है। उन्होंने कृष्ण के अतिरिक्त, शंकर, गंगा की भी महिमा का गान किया है। कुछ पदों में कृष्ण एवं शंकर की अभिन्नता का रूप उपस्थित किया गया है। उनपर बल्लभ सम्प्रदाय का भी प्रभाव परिलक्षित होता है क्योंकि एक स्थल पर उन्होंने राधा का महत्त्व वेद और पुराणों से श्रेष्ठ माना है :

देख्यौ दुरौ वह कुंज कुटीर मैं बैठौ पलोटतु राधिका पायन।

.. रसखान

रसखान को स्तोत्रकार तो नहीं कहा जा सकता परन्तु उनके कुछ सवैये एवं कवित्त वन्दना एवं नख शिख वर्णन। विसद। के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। बाल लीला वर्णन में वत्सल भाव की प्रधानता है। रसखान के पदों में 'वाद' विशेष की अपेक्षा भक्ति अधिक है।

वन्दना : इसमें स्तोत्रकार सदैव निष्काम भाव से अपने इष्टदेव के गुणों का गान करता है। उसकी प्रार्थना कामना रहित होती है और केवल उसकी अनन्यता का परिचय देती है। रसखान के कृष्ण, शंकर, गंगा, एवं हरिशंकर की वन्दना की है :

कृष्ण : सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं।।

गंगा: एरी सुधामयी भागीरथी, सब पथ्य कुपथ्य बनैं तुहि पोसे।
आक धतूरो चबात फिरैं, विष खात फिरै, सिव तोरे भरोसे।।

शंकर : 'रसखानि' जेहैं चितैं चित दै, तिनके दु:ख दुंदभजावत है।
गजखाल कपाल की माल बिसाल सों गाल बजावत आवत है।

हरिशंकरी: `रसखानि ` पितम्बर एक कंधा पर
एक बघंबर , राजत री ।
कोउ देखहु संगम लै बुड़की ,
निकसै यह भेख विराजत री ।।

नखशिख : उनके `नखशिख` वर्णन मैं प्रेम स्वं भक्ति तत्व की प्रधानता है ।

सुभ काछनी बैंनी , पैंजनी वायन आवन मैं न लगै भटको ।
वह सुन्दर को `रसखानि `अली , जुगलीन मैं आइ अबै अटको ।

इस प्रकार रसखान की भक्ति भावना मैं प्रेम तत्व की प्रधानता होने के कारण मुख्य रस शृंगार और वात्सल्य स्वं शान्त को गौण कहा जा सकता है । ब्रजभाषा के माध्यम से उन्होंने भक्ति और प्रेम का समन्वय किया है । आत्म समर्पण की भावना उनकी रचनाओं मैं स्पष्ट दिखाई पड़ती है और वे अपने आराध्य मैं लीन होना चाहते हैं ।

कृष्ण भक्ति काव्य का पर्यवेक्षण :

वर्ण्य विषय : कृष्णभक्ति काव्य मैं कृष्णलीला मुख्य है जिस का आधार `श्रीमद्भागवत ` का दशम स्कंध है । श्रीकृष्ण की इन लीलाओं मैं भ्रमरगीत स्वं रास प्रमुख है । मीरा की भक्ति भावना मैं एकान्त प्रियतम के प्रेम का रूप निर्धारित हुआ है श्रीकृष्ण चरित्र मैं सख्य भाव की प्रधानता है जिसे सबसे अधिक प्रोत्साहन `पुष्टि मार्ग ` से प्राप्त हुआ है । इस प्रकार पुष्टि मार्ग मैं भक्ति की सार्थक भावना छिपी हुई है ।

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार .. `श्रीकृष्ण की भक्ति मैं ही रीति शास्त्र का परिशीलन होने लगा था । कृष्ण काव्य का वर्ण्य विषय केवल कृष्ण भक्ति ही मैं सीमित न रह कर नखशिख , ऋतु वर्णन और नायिका भेद मैं भी विस्तार पाने लगा था ।`[1]

---

१. डा० रामकुमार वर्मा .. हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ८६४

छंद : कृष्ण चरित अधिकांश रूप में गये है और वे ही पद प्रयुक्त हुए हैं जो राग रागनियों द्वारा गाये जा सकते थे । इनके अतिरिक्त जिन छन्दों का प्रयोग कृष्ण भक्ति काव्य में हुआ है उनमें रोला , चौपाई , और दोहा प्रधान हैं ।

भाषा : कृष्ण काव्य की भाषा ब्रज है । नंददास जी की भाषा में तद्भव शब्द भी आए हैं परन्तु उनसे ब्रजभाषा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है ।

रस : यदि देखा जाय तो कृष्ण काव्य में श्रृंगार , अद्भुत एवं शान्त रस को प्रधानता हो जायेगा । संयोग एवं वियोग के इतने अधिक रूपों का विवेचन पूर्व साहित्य में दुर्लभ है । डा० रामकुमार वर्मा ने कृष्णभक्ति काव्य के रसों के विषय में लिखा है .. 'पुष्टिमार्ग ने अद्भुत और शान्त को प्रश्रय दिया । श्रीकृष्ण का देवत्व और अलौकिक कार्य व्यापार अद्भुत रस की सृष्टि में सहायक हुआ और अनुग्रह याचना से शान्त रस की सृष्टि हुई । इन रसों के साथ हास्य और वीर रस गौण रूप में हैं ।'[१]

---

१. डा० रामकुमार वर्मा .. हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ८६६